ब्रह्मांड का रहस्य

पढ़ें और सीखें योजना

ब्रह्मांड का रहस्य

के.पी. सिन्हा
इ.ए. लॉर्ड

विभागीय सहयोग
राम दुलार शुक्ल

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

जून 1992
ज्येष्ठ 1914

PD 10T-SD

प्रकाशन सहयोग

सी. एन. राव : अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग

प्रभाकर द्विवेदी : मुख्य संपादक
शर्मा दत्त : सहायक संपादक
यू. प्रभाकर राव : मुख्य उत्पादन अधिकारी
डी. साई प्रसाद : उत्पादन अधिकारी
राजेन्द्र चौहान : उत्पादन सहायक

आवरण : चन्द्र प्रकाश टंडन

मूल्य : रु. 13.50

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित, फोटो टाईपसैट, प्रिंट एंड फोटो टाईप सैटर्स, नारायणा फेज़ II, नई दिल्ली 110028 तथा सरस्वती प्रिंटर्स, ए-16, सैक्टर-8, नौएडा, गाजियाबाद (यू.पी.) द्वारा मुद्रित

प्राक्कथन

विद्यालय शिक्षा के सभी स्तरों के लिए अच्छे शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रमों और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण की दिशा में हमारी परिषद् पिछले पच्चीस वर्षों से भी अधिक समय से कार्य कर रही है। हमारे कार्य का प्रभाव भारत के सभी राज्यों और संघशासित प्रदेशों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से पड़ा है और इस पर परिषद् के कार्यकर्ता संतोष का अनुभव कर सकते हैं।

हमने देखा है कि अच्छे पाठ्यक्रम और अच्छी पाठ्यपुस्तकों के बावजूद हमारे विद्यार्थियों की रुचि स्वतः पढ़ने की ओर अधिक नहीं बढ़ती। इसका एक मुख्य कारण अवश्य ही हमारी दूषित परीक्षा-प्रणाली है जिसमें पाठ्यपुस्तकों में दिए गए ज्ञान की ही परीक्षा ली जाती है। इस कारण बहुत ही कम विद्यालयों में कोर्स के बाहर की पुस्तकों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है। अतिरिक्त पठन में बच्चों की रुचि न होने का एक बड़ा कारण यह भी है कि विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों के लिए कम मूल्य की अच्छी पुस्तकें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध भी नहीं हैं। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में इस कमी को पूरा करने के लिए कुछ काम प्रारंभ हुआ है पर वह बहुत ही नाकाफ़ी है।

इस दृष्टि से परिषद् ने बच्चों की पुस्तकों के लेखन की दिशा में एक महत्वाकांक्षी योजना प्रारंभ की है। इसके अंतर्गत "पढ़ें और सीखें" शीर्षक से एक पुस्तकमाला तैयार करने का विचार है जिसमें विभिन्न आयुवर्ग के

बच्चों के लिए सरल भाषा और रोचक शैली में अनेक विषयों पर बड़ी संख्या में पुस्तकें तैयार की जाएँगी। हम आशा करते हैं कि बहुत शीघ्र ही हिन्दी में हम निम्नलिखित विषयों पर 50 से भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित कर सकेंगे।

(क) शिशुओं के लिए पुस्तकें
(ख) कथा-साहित्य
(ग) जीवनियां
(घ) देश-विदेश परिचय
(ङ) सांस्कृतिक विषय
(च) वैज्ञानिक विषय
(छ) सामाजिक विज्ञान के विषय

इन पुस्तकों के निर्माण में हम प्रसिद्ध लेखकों, वैज्ञानिकों, अनुभवी अध्यापकों और योग्य कलाकारों का सहयोग ले रहे हैं। प्रत्येक पुस्तक के प्रारूप पर भाषा, शैली और विषय-विवेचन की दृष्टि से सामूहिक विचार करके उसे अंतिम रूप दिया जाता है।

परिषद् इस माला की पुस्तकों को लागत-मूल्य पर ही प्रकाशित कर रही है ताकि ये देश के हर कोने में पहुँच सकें। भविष्य में इन पुस्तकों को अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराने की भी योजना है।

हम आशा करते हैं कि शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के क्षेत्र में किए गए कार्य की भाँति ही परिषद् की इस योजना का भी व्यापक स्वागत होगा।

प्रस्तुत पुस्तक **ब्रह्मांड का रहस्य** के लेखन के लिए श्री **के.पी. सिन्हा** एवं **इ.ए. लॉर्ड** ने हमारा निमंत्रण स्वीकार किया जिसके लिए हम उनके अत्यंत आभारी हैं। जिन-जिन विद्वानों, अध्यापकों और कलाकारों से इस पुस्तक को अंतिम रूप देने में हमे सहयोग मिला है उनके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

हिन्दी में "पढ़ें और सीखें" पुस्तक माला की यह योजना प्रो. अर्जुन देव के मार्ग-दर्शन में चल रही है। उनके सहयोगियों में श्रीमती संयुक्ता लूदरा, डा. रामजन्म शर्मा, डा. सुरेश पांडेय, डा. हीरालाल बाछोतिया और डा. अनिरुद्ध राय सक्रिय सहयोग दे रहे हैं।

इस योजना में विज्ञान की पुस्तकों के लेखन का मार्ग-दर्शन दिल्ली विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति और राजस्थान विश्वविद्यालय में वर्तमान प्रोफेसर – एमेरिटस डा. रामचरण मेहरोत्रा कर रहे हैं। विज्ञान की पुस्तकों के लेखन के संयोजन और अंतिम संपादन आदि का दायित्व हमारे विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग के प्रो. राम दुलार शुक्ल वहन कर रहे हैं।

मैं डा. रामचरण मेहरोत्रा को और अपने सभी सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद और बधाई देता हूँ।

इन पुस्तकों को इतने अच्छे ढंग से प्रकाशित करने के लिए मैं परिषद् के प्रकाशन विभाग के कार्यकर्ताओं, विशेषकर विभागाध्यक्ष श्री सी.एन. राव और मुख्य संपादक श्री प्रभाकर द्विवेदी को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

इस माला की पुस्तकों पर बच्चों, अध्यापकों और बच्चों के माता-पिता की प्रतिक्रिया का हम स्वागत करेंगे ताकि इन पुस्तकों को और भी उपयोगी बनाने में हमें सहयोग मिल सके।

के. गोपालन
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

दो शब्द

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी) की "पढ़ें और सीखें" योजना के अंतर्गत यह एक छोटा-सा प्रयास है। जब परिषद् के प्रगतिशील निदेशक डा. के. गोपालन ने मुझे इस दिशा में विज्ञान के विषयों का कार्यभार संभालने के लिए आमंत्रित किया तो अपने वैज्ञानिक मित्रों की अतिव्यस्तता के कारण यह उत्तरदायित्व स्वीकार करने में मुझे संकोच था।

इस दिशा में मेरा प्रयास रहा है कि विज्ञान के विभिन्न विषयों के जाने-माने विद्वानों को इस सराहनीय कार्य के लिए निमंत्रित कर सकूँ। ऐसा मेरा विश्वास है कि खोज और अनुसंधान की आनंदपूर्ण अनुभूतियों वाले वैज्ञानिक ही अपने आनंद की एक झलक बच्चों तक पहुँचा सकते हैं। मैं उनका हृदय से आभारी हूँ कि उन्होंने अंकुरित होने वाली पीढ़ी के लिए अपने बहुमूल्य समय में से कुछ क्षण निकालने का प्रयास किया। बालक राष्ट्र की सब से बहुमूल्य और महत्वपूर्ण निधि है और मेरे लिए यह किंचित आश्चर्य और संतोष की बात है कि हमारे इतने लब्धप्रतिष्ठ और अत्यंत व्यस्त वैज्ञानिक बच्चों के लिए थोड़ा परिश्रम करने के लिए सहर्ष मान गए हैं। मैं सभी वैज्ञानिक मित्रों के लिए हृदय से आभारी हूँ।

इन पुस्तकों की तैयारी में हमारा मुख्य ध्येय रहा है कि विषय ऐसी शैली में प्रस्तुत किया जाए कि बच्चे स्वयं इसकी ओर आकर्षित हों, साथ ही

भाषा इतनी सरल हो कि बच्चों को इनके अध्ययन से विज्ञान के गूढ़तम रहस्यों को समझने में कोई कठिनाई न हो। इन पुस्तकों के पढ़ने से उनमें अधिक पढ़ने की रुचि पैदा हो, उनके नैसर्गिक कौतूहल में वृद्धि हो जिससे ऐसे कौतूहल और उसके समाधान के लिए स्वप्रयत्न उनके जीवन का एक अंग बन जाए।

यह योजना एन.सी.ई.आर.टी. के वर्तमान निदेशक डा. के. गोपालन की प्रेरणा से चल रही है। मैं उन्हें इसके लिए बधाई और धन्यवाद देता हूँ।

प्रो. के.पी. सिन्हा और **डा. इ.ए. लॉर्ड** ने इस पुस्तक के लिखने के लिए मेरा अनुरोध स्वीकार किया जिसके लिए मैं हृदय से आभारी हूँ। परिषद् के विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग के प्रो. रामदुलार शुक्ल विज्ञान की पुस्तकों के लेखन से संबंधित योजना के संयोजक हैं और बहुत परिश्रम और कुशलता से अपना कार्य कर रहे हैं। प्रो. अर्जुन देव "पढ़ें और सीखें" संपूर्ण योजना के संचालक हैं। मैं इन दोनों को हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

आशा है कि ऐसी पुस्तकों से हमारी नई पीढ़ी की बाल्यकाल ही में वैज्ञानिक मानसिकता का शुभारंभ हो सकेगा और विज्ञान के नवीनतम ज्ञान के साथ ही साथ उन्हें अपने देश की प्रगतियों एवं वैज्ञानिकों के कार्य की झलक मिल सकेगी जिससे उनमें अपने राष्ट्र के प्रति गौरव की भावना का भी सृजन होगा।

रामचरण मेहरोत्रा
अध्यक्ष
'पढ़ें और सीखें योजना'
(विज्ञान)

लेखक परिचय

प्रो. के.पी. सिन्हा

सुपरिचित वैज्ञानिक प्रो. के.पी. सिन्हा बहुत सी अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संस्थाओं के सदस्य हैं। भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में 1974 में आपको शांतिस्वरूप भटनागर पुरस्कार, 1975 में भौतिकी के क्षेत्र में मेरु (स्विटजरलैंड) पुरस्कार, 1984 में भारतीय विज्ञान संस्थान के डिस्टिंग्विस्ड एलुमुनी पुरस्कार तथा अन्य अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। प्रो. सिन्हा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के राष्ट्रीय प्रवक्ता रहे हैं। आप 1970 से 1989 तक भारतीय विज्ञान संस्थान के भौतिकी एवं गणित-विज्ञान तथा सैद्धांतिक अध्ययन विभाग में वरिष्ठ प्राध्यापक एवं अध्यक्ष रहे हैं। प्रो. सिन्हा 1986 से 1988 तक एम.एस.आई.एल. प्रोफेसर तथा 1990 से 1991 तक वरिष्ठ वैज्ञानिक पद पर कार्यरत रहे। सम्प्रति प्रो. सिन्हा नेहू (NEHU) में कम्प्लेक्स सिस्टम पर आधारित मूल अनुसंधान संस्थान, शिलांग में निदेशक हैं। प्रो. सिन्हा का मुख्य अनुसंधान कार्य-ठोस, अन्योन्य क्रिया, प्रावस्था संक्रमण (चुम्बकत्व एवं अति चालकता) ब्रह्मांडीय माडल, विचित्रता युक्त बिगबैंग ब्रह्मांडिकी तथा मूल विज्ञान के अन्य पहलू रहे हैं। आपकी अब तक 200 से अधिक शोध पत्र तथा 5 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

डा. ई.ए. लार्ड

वैज्ञानिक डा. लार्ड ने प्रो. सिन्हा के साथ रिलेटिविटी (आपेक्षिकता), प्वांकारे गास सिद्धान्त (विशेषकर गुरुत्वाकर्षण एवं ब्रह्मांडिकी में) तथा प्रबल गुरुत्व के क्षेत्र में कार्य किया है। डा. लार्ड ने प्रो. सिन्हा के अनुसंधान दल में रहकर इंग्लैंड तथा जर्मनी (1972-1975) में तथा भारत में (1982-89) शोध कार्य किया है। आप लगभग 40 शोध पत्रों के प्रणेता हैं।

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ:

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

विषय क्रम

भाग-3 आकाश गंगाएँ और ब्रह्मांड विज्ञान

भाग – एक

सूर्य मंडल

परिचय

रात में सितारों भरे आकाश को देखने से एक विचित्र-सा अनुभव होता है। लेकिन ऐसा अनुभव रात में बिजली की रोशनी से चमकते हुए महानगरों में पूर्णरूप से नहीं मिलता है। नगर से दूर, शान्त और स्वच्छ वातावरण में जो अनुभव होता है उसका वर्णन करना कठिन है। प्राचीन काल के मनुष्यों पर भय और आश्चर्य का प्रभाव इतना पड़ा कि उनके मन में धार्मिक भावनायें उत्पन्न हुईं। उन्होंने सोचा कि इस विशाल ब्रह्मांड को रचने वाला कोई बड़ा ही विराट, शक्तिमान तथा ज्ञानी रहा होगा। इस विचार और सृष्टि के रहस्य को देखकर मनुष्य ने ईश्वर जैसी सत्ता की स्थापना की। आकाश देवताओं का स्थान हो, यह जाना गया और उनके अनुसार ये देवता प्रकृति के भिन्न-भिन्न पहलुओं को देखने और नियंत्रण करने वाले माने गये। अग्नि, वायु, महासागर, आकाश, पर्वत, चन्द्रमा, सूर्य इत्यादि को देव रूप दिया गया। इन देवताओं को प्रसन्न रखने के लिए हमारे पूर्वजों ने भिन्न-भिन्न पूजाओं की रचना की और उनकी प्रथा चलायी। सूर्य, चन्द्रमा और आकाश के देवताओं पर आधारित बहुत-सी कहानियाँ प्रचलित हैं। आस्ट्रेलिया के आदिवासियों की कथाओं में ईश्वर ब्रह्मांड का रचने वाला है और आकाश गंगा के उस पार रहता है। सूर्य और चन्द्रमा उनकी संतानें हैं और ये मानव

को उनका संदेश देती हैं। अफ्रीका के आदिवासी सूर्य को ईश्वर का नेत्र समझते हैं। इण्डोनेशिया और पेरु में सूर्य को एक विशाल पक्षी समझा जाता है। सूर्य सात घोड़ों के रथ पर चलता है यह विश्वास कई देशों में प्रचलित है। इसका वर्णन प्राचीन ग्रंथों में भी मिलता है।

यह स्थिति उस समय की है जब मानव एक शिकारी था और भोजन के लिये शिकार पर निर्भर था। लेकिन जब मानव ने खेती करनी आरंभ की तो उसने सूर्य और चन्द्रमा की गति को सावधानी से देखना शुरू किया। यह फसल के बोने और काटने के समय को निर्धारित करने के लिए ही नहीं अपितु ऋतु और उनसे जुड़े हुए त्यौहारों को जानने के लिए भी आवश्यक था। समुद्र में दिशा संकेत के लिए आकाश में भ्रमण करने वाले सितारों का ठीक स्थान जानना भी आवश्यक था। इन्हीं आवश्यकताओं ने खगोल शास्त्र को जन्म दिया।

सूर्य, चन्द्रमा और तारों की गतिविधि की सबसे पुरानी रचना भारतीय चाल्डीन्स (Chaldeans) और बेबीलोन (इराक) सभ्यता में पायी जाती है। यह लगभग पांच हजार वर्ष पुरानी है। उस समय यह विश्वास था कि पृथ्वी पर होने वाली घटनायें ग्रहों द्वारा संचालित हैं। लेकिन आधुनिक विज्ञान के अनुसार इसमें कोई सच्चाई नहीं है। यहाँ हम देखेंगे कि ग्रहों और तारों की गतिविधियों का परीक्षण करने से मानव ने कैसे धीरे-धीरे एक शास्त्र का विस्तार किया जिसमें आधुनिक ब्रह्मांड (universe) का ज्ञान भरा है।

1

पृथ्वी और सूर्य की गति

पृथ्वी सूर्य के चारों ओर एक गोल रास्ते पर चलती है (चित्र 1) इस तल को प्लेन ऑफ इक्लीप्स (Plane of eclipse) कहते हैं। पृथ्वी के एक बार पूरा घूमने के समय को एक साल कहते हैं। समय का यह एक बुनियादी माप है। पृथ्वी एक लट्टू की तरह अपने अक्ष (axis) (जो उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव से गुज़रता है) पर घूमती है। इसी कारण पृथ्वी पर खड़ा व्यक्ति सूर्य को उदय होते, आकाश में ऊपर आते और फिर दूसरी ओर अस्त होते देखता है। जिस समय सूर्य आकाश पर सबसे ऊँचे स्थान पर पहुँचता है उसे मध्याह्न (noon) कहते हैं। एक मध्याह्न से दूसरी मध्याह्न तक का समय "एक दिन" होता है। यह भी समय का एक बुनियादी माप है। हम "एक दिन" को 24 घंटों में बांटते हैं। पृथ्वी को अपने अक्ष पर एक बार घूमने में एक दिन से थोड़ा कम समय लगता है। क्योंकि अपने अक्ष पर घूमने के साथ वह अपनी वार्षिक कक्षा (orbit) पर भी थोड़ा आगे बढ़ती है। इसलिए पृथ्वी का अपने
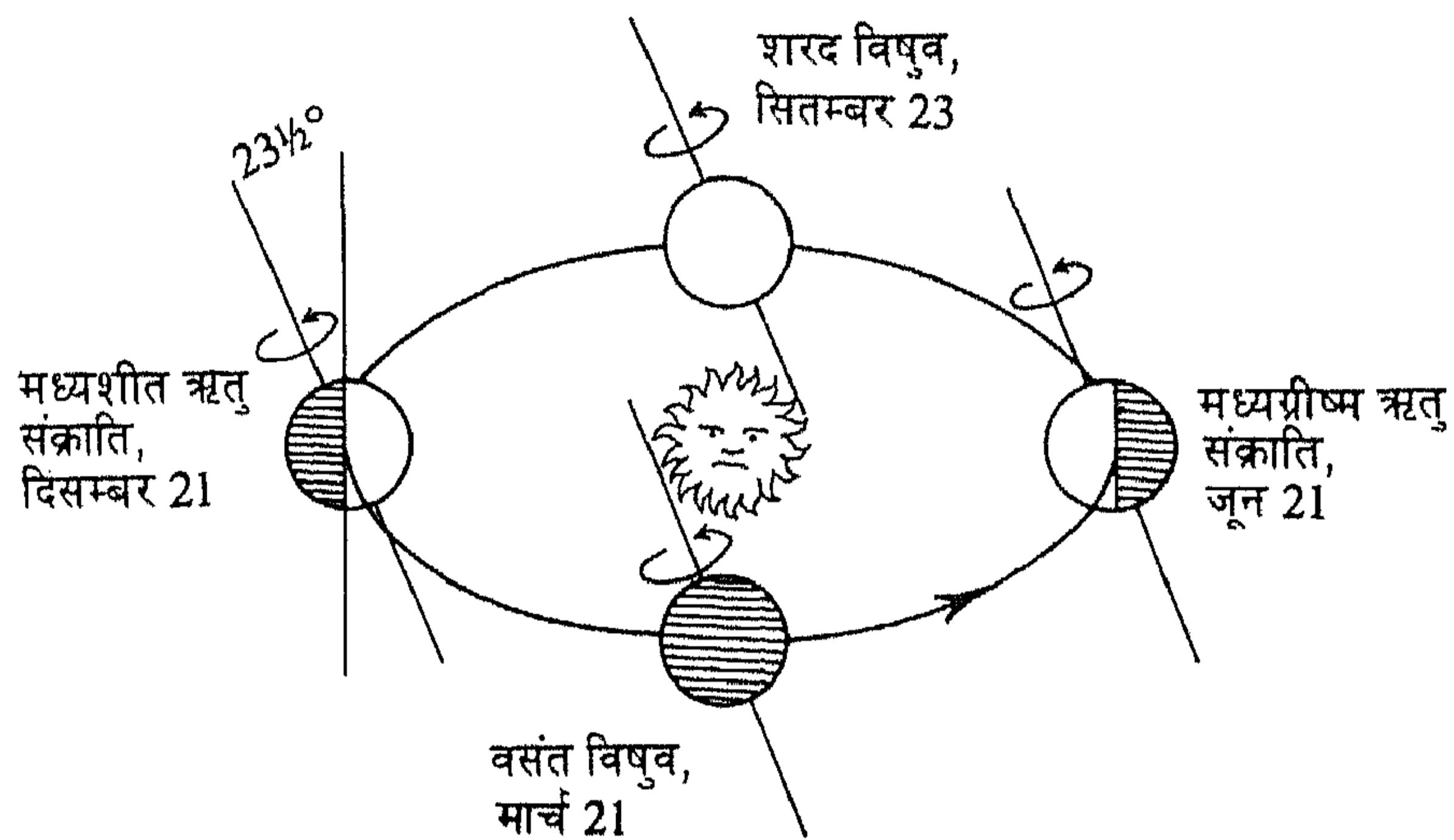
चित्र 1. **पृथ्वी का दैनिक घूर्णन और इसकी सूर्य के चारों ओर वार्षिक यात्रा**

अक्ष पर एक बार घूमने का समय 23 घंटे 56 मिनट होता है। यहाँ एक और समस्या भी है और वह है कि पृथ्वी अपने अक्ष पर जाड़े के दिनों में तेज गति से चलती है और ग्रीष्म ऋतु में उससे धीरे। इसलिए एक दिन का समय, ऋतु के अनुसार भी बदलता रहता है और इसलिए हमें समय का औसत लेना पड़ता है। इस औसत दिन को ''औसत सौर दिवस'' कहते हैं।

प्राचीन खगोलज्ञों को वार्षिक ऋतुओं और त्यौहारों की पूर्वसूचना आम जनता को देनी पड़ती थी। इसके लिए उन्हें एक उचित कैलेन्डर की जरूरत थी जो हर साल के लिए लागू हो। इसमें भी एक कठिनाई उत्पन्न हुई क्योंकि एक साल में दिनों की संख्या पूर्णांक नहीं है अपितु इसमें 365.2422 दिन होते हैं। प्राचीन मिस्र में 365 दिन का साल माना जाता था।

उन्होंने एक साल में 12 महीने रखे और एक महीने में 30 दिन। बाकी बचे 5 दिन त्यौहारों के लिए रखे। चूंकि एक साल में 365.2422 दिन होते हैं इसलिए उनका कैलेन्डर चार साल बाद एक दिन से गलत हो जाता था। इसलिए नाइल नदी की वार्षिक बाढ़ की तारीख जो कि मिस्र की खेती के लिए अत्यन्त आवश्यक थी देर से आने लगी। कैलेन्डर के अनुसार नाइल की बाढ़ का एक और खगोलिक घटना से पता चल सकता था। हर साल वह बाढ़ आकाश में सबसे चमकीले तारे सिरीयस के प्रकट होने पर आती थी। मिस्र देशवासी सिरीयस को बाढ़ का देवता सोथीस मानते थे। वहाँ के पुजारी जो खगोलिक तथा समय माप का काम करते थे, जानते थे कि 1460 ($= 4 \times 365$) दिन के बाद ये सिरीयस की घटना फिर होगी। इसलिए सोथीस साल और कैलेन्डर साल में एकरूपता लाने के लिए उन्होंने तय किया कि सोथीस साल में त्यौहार के 6 दिन होंगे और कैलेन्डर साल में पाँच होंगे। इस तरह लीप वर्ष के विचार की उत्पत्ति हुई, लेकिन यह सुझाव माना नहीं गया। मिस्र के पुजारी नहीं चाहते थे कि उनके सिवा वहाँ की आम जनता इस बात को आसानी से समझ सके।

आधुनिक लीप वर्ष का प्रारम्भ (जिसमें हर एक चौथे साल में 366 दिन होते हैं और बीच के तीन साल 365 दिन के होते हैं) रोमन लोगों के समय जूलियस सीज़र के राज्य में हुआ। इसमें सौर वर्ष का 365¼ दिन का होना ध्यान में लिया गया है। बहुत समय बीतने के बाद यह व्यवस्था भी गलत हो जाती थी। आधुनिक कैलेन्डर पोप ग्रेगरी के समय 1582 ई. में चला। इस पद्धति में, कोई साल लीप वर्ष (366 दिन का) तब होता जब 4 से वह विभाजित हो। लेकिन यदि यह 100 से भी विभाजित हो तब लीप वर्ष होने के लिए इसको 400 से भी विभाजित होना चाहिए। उदाहरण के लिए,

सन् 1900 लीप वर्ष नहीं था परन्तु सन् 2000 लीप वर्ष होगा।
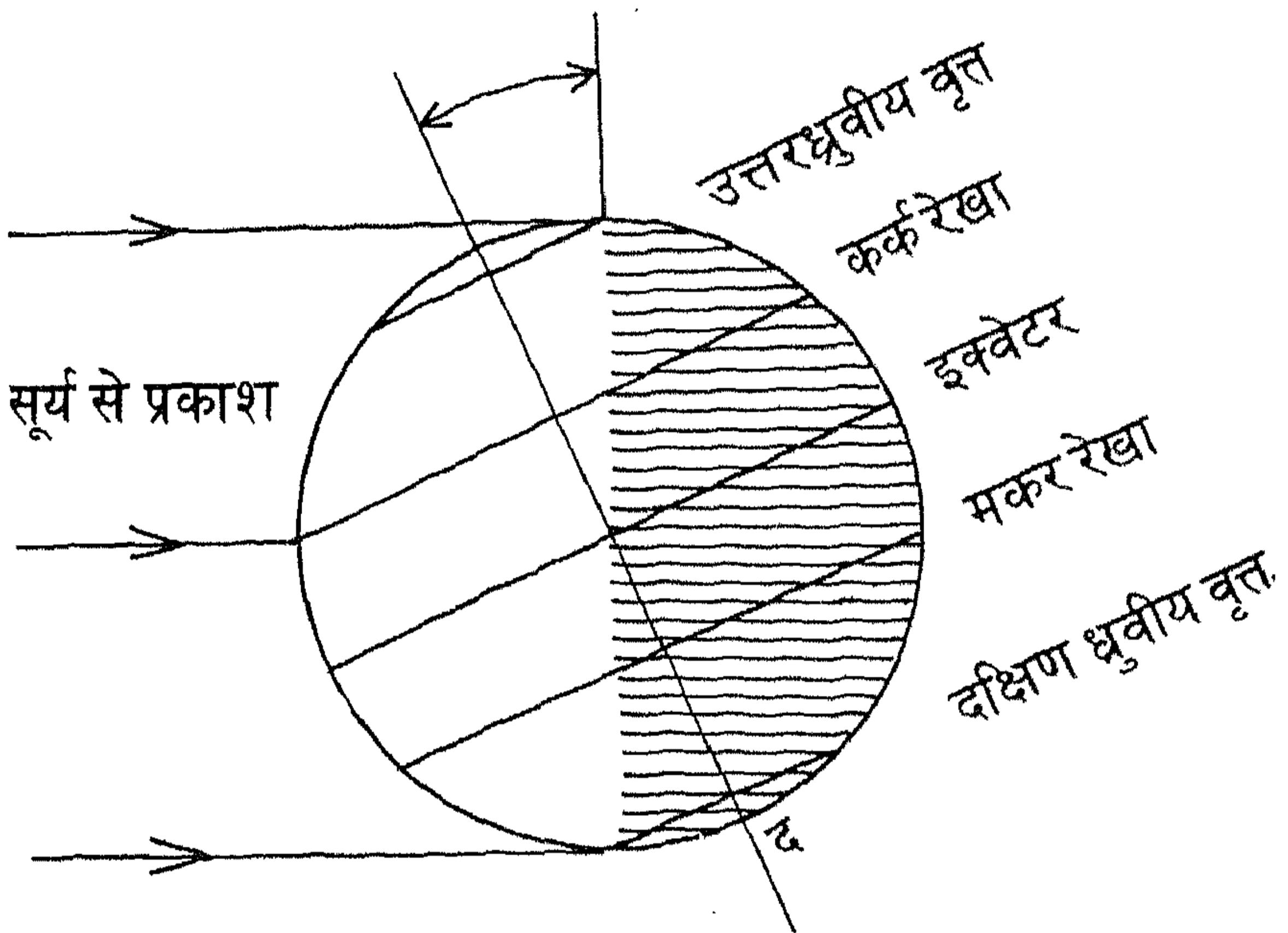
चित्र 2. **पृथ्वी के अक्ष का झुकाव। इससे ऋतुओं की उत्पत्ति होती है**

चित्र 2 में गरमी के मध्याह्न के दिन पृथ्वी का एक विवर्धित रूप दिखाया गया है। इसमें सूर्य की किरणें पृथ्वी की ओर आती दिखायी गयी हैं। उत्तर-दक्षिण अक्ष, एक्लिप्टिक समतल (ecliptic plane) पर लम्बवत नहीं है बल्कि यह 23½° से झुका है। इसी झुकाव के कारण ऋतुऐं होती हैं।

पृथ्वी पर खड़ा एक व्यक्ति, पृथ्वी के साथ एक दिन में एक चक्कर

पूरा कर लेता है। ये लैटीट्यूड के वृत्त (circles of latitude) चित्र-2 में बिन्दु अंकित रेखाओं द्वारा दिखाये गये हैं। उत्तर ध्रुवीय वृत्त (arctic circle) के उत्तर में खड़े व्यक्ति को सूर्यास्त नहीं दिखाई देगा। वह 24 घंटे सूर्य के प्रकाश में ही खड़ा रहेगा। इसीलिए उत्तर ध्रुवीय वृत्त के उत्तर वाले भाग को ''आधीरात के सूर्यवाला स्थल'' कहा जाता है। यदि यह व्यक्ति ठीक उत्तर ध्रुवीय वृत्त पर खड़ा हो, तो उसे सूर्यास्त आधीरात को क्षितिज में दिखाई देगा। इस वृत्त के और दक्षिण दिशा में अगर हम आयें तो एक ऐसे स्थान पर पहुँचेंगे जहाँ गरमी के मध्याह्न के दिन (mid summers day) सूर्य सीधे ऊपर दिखाई देगा। इस वृत्त को कर्क-रेखा (tropic of cancer) कहते हैं। इस दिन भूमध्य रेखा (equator) के उत्तर में सभी स्थानों पर दिन, रात से लम्बा होगा। भूमध्य रेखा पर दिन और रात बराबर समय के होते हैं। दक्षिण ध्रुवीय क्षेत्र पर इस दिन (गरमी के मध्याह्न के दिन) सूर्योदय होता ही नहीं है।

पृथ्वी पर किसी स्थान का लैटीट्यूड बताने के लिए हम भूमध्य से प्रारंभ करते हैं और उसे डिग्री (अंश) में व्यक्त करते हैं। भूमध्य रेखा 0° लैटीट्यूड पर, उत्तर एवं दक्षिण ध्रुव 90° लैटीट्यूड पर, कर्क और मकर रेखायें क्रमशः 23½° उत्तर में एवं 23½° दक्षिण में, उत्तर ध्रुवीय वृत 66½° उत्तर में (66½° = 90°—23½°) और दक्षिणध्रुवीय वृत्त 66½° दक्षिण में होंगे।

चित्र 1 और 2 को देखने से यदि हम मध्यशीतकाल और विषुओं**

****विषुव (equinox)** — पृथ्वी की दो स्थितियाँ जिसमें दिन रात बराबर होते हैं। 21 मार्च एवं 23 सितम्बर में ये स्थितियाँ आती हैं।

(equinoxes) का नक्शा बनायें तो हमें पृथ्वी के किसी भी भाग से निम्न दिखाई देगा।

1. ध्रुवों पर 6 महीने दिन रहता है और बाकी 6 महीने रात।
2. विषुओं पर 12 घंटे का दिन और 12 घंटे की रात होती है।
3. ध्रुवों पर विषुव के समय सूर्योदय और सूर्यास्त के दिन होते हैं।
4. मध्यशील काल में मध्याह्न के समय सूर्य सीधे मकर रेखा के ऊपर रहता है।

प्राचीन काल के खगोलज्ञ यह नहीं जानते थे कि पृथ्वी एक लट्टू के समान अपने अक्ष पर घूमते हुए सूर्य के चारों तरफ अपनी कक्षा में घूमती है। उनके विचार में पृथ्वी एक सपाट सतह थी जो आकाश के कटोरे से ढकी है और इस कटोरे (bowl) और पृथ्वी के बीच सूर्य और चन्द्रमा विचरते हैं। अब हम देखेंगे कि यह पुराना विचार आधुनिक विचार से कैसे संबंधित है।

मध्यशीतकाल में मध्याह्न के समय सूर्य सीधे मकर रेखा के ऊपर रहता है। तारे पृथ्वी से बहुत ही दूर हैं इसका अनुमान हम इस प्रकार लगा सकते हैं—यदि हम चित्र 1 को सिकोड़ कर एक बिन्दु बना दें तो उसी माप में पृथ्वी का सबसे निकटतम तारा 1000 मीटर पर होगा। यही कारण है कि पृथ्वी के सूर्य के चारों तरफ घूमने पर भी तारे एक दूसरे के सापेक्ष अपनी दूरी नहीं बदलते दिखायी देते। तारा मंडल सालभर एक ही जैसा दिखता है। इस तथ्य ने कि "सभी तारे अपने निर्धारित स्थान पर रहते हैं", विश्व के बारे में हमारे पुराने विचारों को प्रभावित किया। इस तथ्य के अनुसार तारे खगोलीय गोलक पर रोशनी के बिन्दु हैं। यदि तारों को रात के समय कई घंटे देखा जाये तो ये एक बिन्दु (खगोलीय ध्रुव) के चारों ओर घूमते नजर आयेंगे।

खगोलीय उत्तर ध्रुव के समीप एक तारा है जिसे पोलारिस (ध्रुव
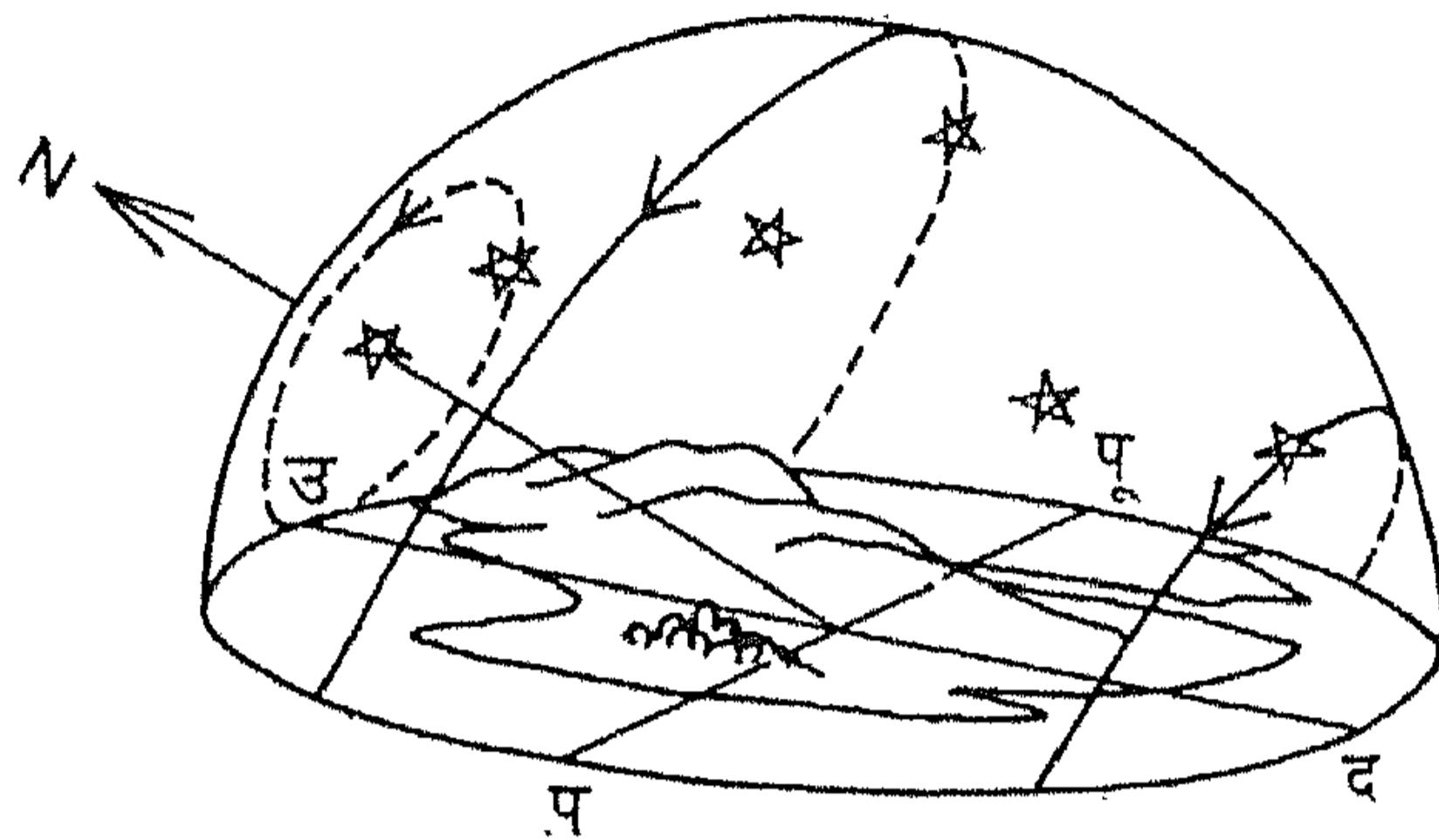
चित्र 3. **खगोलीय ध्रुव के चारों ओर तारों का दृश्य घूर्णन**

तारा)कहते हैं। यदि एक त्रिपाद पर एक कैमरा रख कर पोलारिस का कई घंटों तक का फोटो लें तो इस तारे के घूमने का एक अद्‌भुत चित्र मिलेगा। आज हम यह जानते हैं कि इस तारे के बजाय पृथ्वी घूमती है। क्षितिज से पोलारिस का जो कोण बनता है वह उस स्थान (जहाँ हम खड़े हों) का लैटीट्यूट कहलाता है। प्राचीन खगोलज्ञों को यह ज्ञात नहीं था। वे समझते थे कि पूरा खगोल ही घूमता है।

दिन के समय तारों की भाँति सूर्य भी एक पथ पर भ्रमण करते दिखाई देता है। वह उत्तरी ध्रुव से गुज़रते हुए अक्ष के चारों ओर घूमता है (चित्र 4)

विषुवों पर, सूर्य प्रातः 6 बजे उदय होता है और शाम को 6 बजे अस्त होता है। गरमी के महीनों में वह थोड़ा पहले और थोड़ा उत्तर दिशा में उदय होता है। सूर्यास्त थोड़ी देर से एवं थोड़ा उत्तर ही में होता है। जाड़े के महीनों
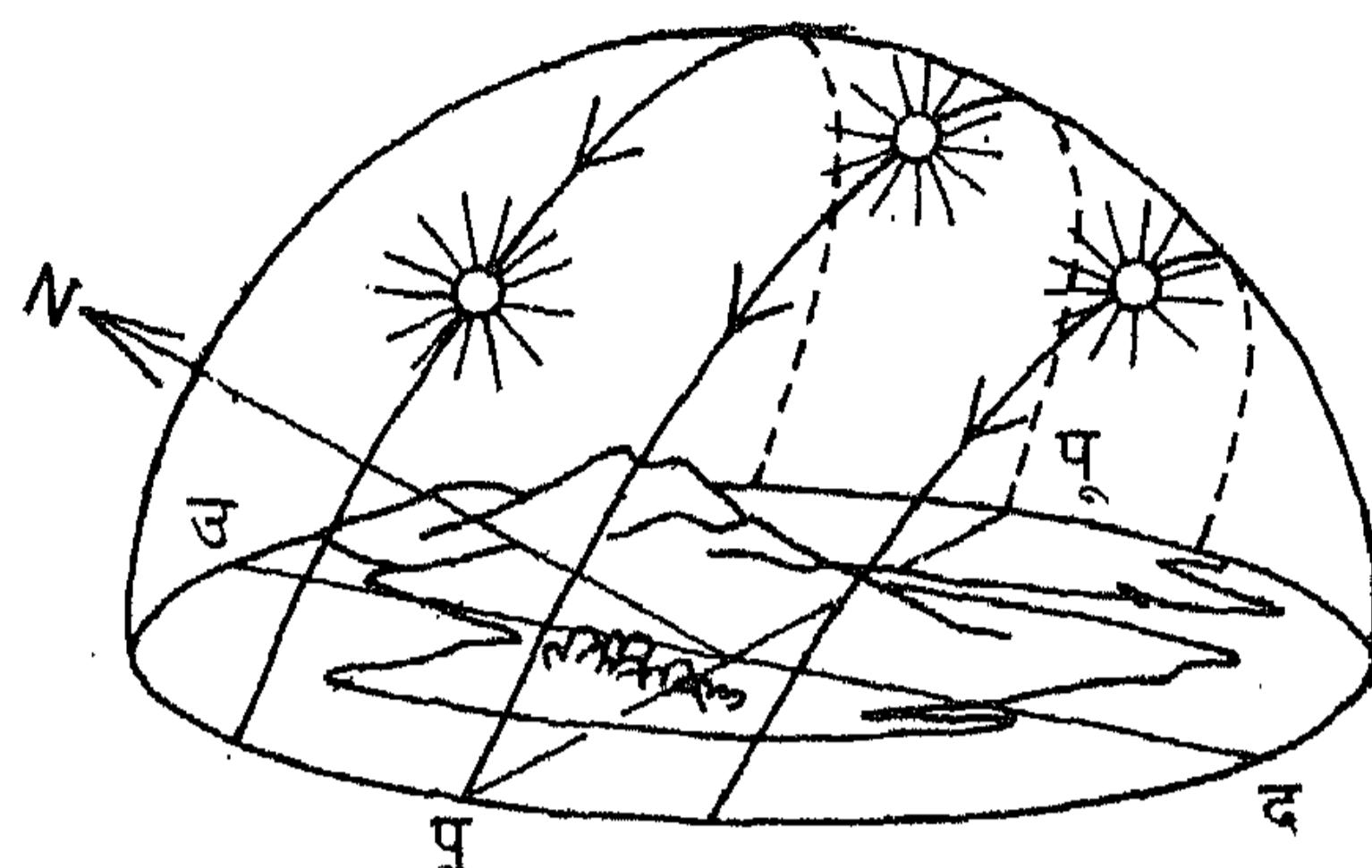
चित्र 4. सूर्य का दैनिक आकाश पथ और ऋतु के साथ उसमें अन्तर

में सूर्योदय थोड़ी देर से दक्षिण की तरफ और सूर्यास्त भी थोड़ा पहले दक्षिण की ही तरफ होता है। यह सब चित्र 4 में दिखाया गया है और यह परिणाम घूमती हुई पृथ्वी के अपने अक्ष पर झुकने के कारण है। मध्यशीतकाल में मध्याह्न के समय सूर्य 23½° नीचे और अपने विषुव पर होने वाली स्थिति के दक्षिण में होता है और मध्य ग्रीष्म ऋतु में 23½° ऊपर होता है।

प्राचीन खगोलज्ञों ने सूर्य की आभासी (apparent) गति का विस्तारपूर्वक प्रेक्षण किया था। सूर्य का स्थान कैसे बदलता है, यह देखने के लिये हम सूर्य के प्रकाश में एक सीधी लाठी गाड़ दें और उसकी क्षैतीज सतह पर पड़ने वाली छाया को देखें। ज्यों-ज्यों सूर्य का स्थान बदलता जायेगा लाठी की छाया का भी स्थानान्तरण होता जायगा। चित्र-5 में यह दिखाया गया है कि, एक त्रिकोण धूप घड़ी की छाया पूरे दिन और साल के विभिन्न समयों में कैसे घूमती है। इसमें संख्यायें दिन के समय को बताती हैं।
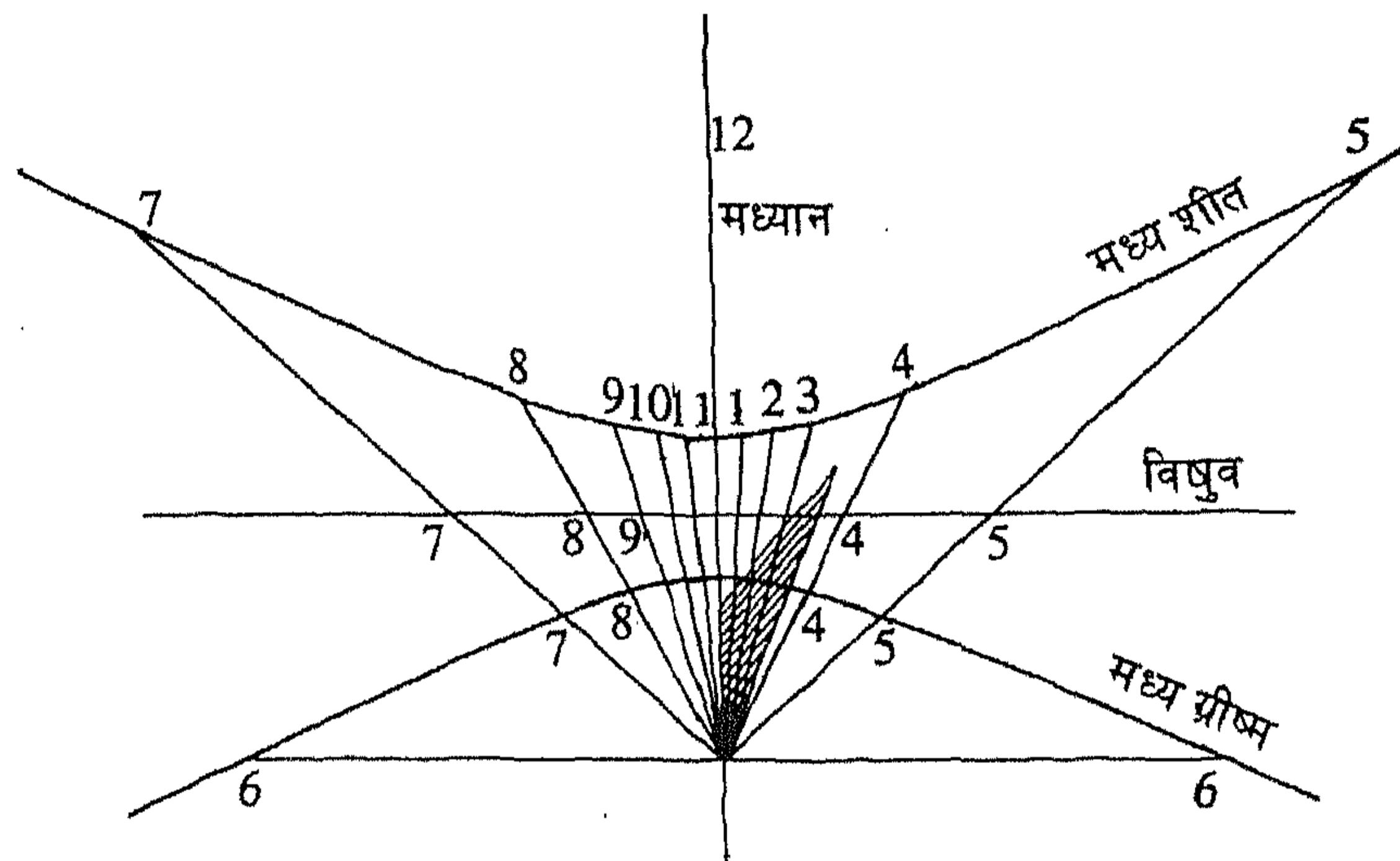
चित्र 5. **धूप घड़ी (सन डायल)–छाया के स्थान में परिवर्तन सारे दिन में और वर्ष में**

विश्व का वह चित्र जिसमें पृथ्वी समतल है और खगोलीय गोलक से ढकी है (चित्र 3 और 4) लम्बी यात्रा करने पर गलत सिद्ध होगा। यदि हम उत्तर दिशा में जायें तो उत्तरी खगोलीय ध्रुव आकाश में और ऊँचा हो जाता है (करीब 1° हर एक 70 मील की यात्रा पर) और दक्षिण दिशा में जाने पर नीचे हो जाता है।

यह तस्वीर लैटीट्यूड के अनुसार कैसे बदलती है यह चित्र 6 में दिखाया गया है। इससे यह स्पष्ट व निर्णायक रूप से सिद्ध हो जाता है कि

पृथ्वी चपटी नहीं है। सूर्य आकाश में किस स्थान पर होगा, यह पृथ्वी के उस स्थान पर निर्भर करता है जहां से हम उसको देखते हैं। इस प्रेक्षण से यूनानी
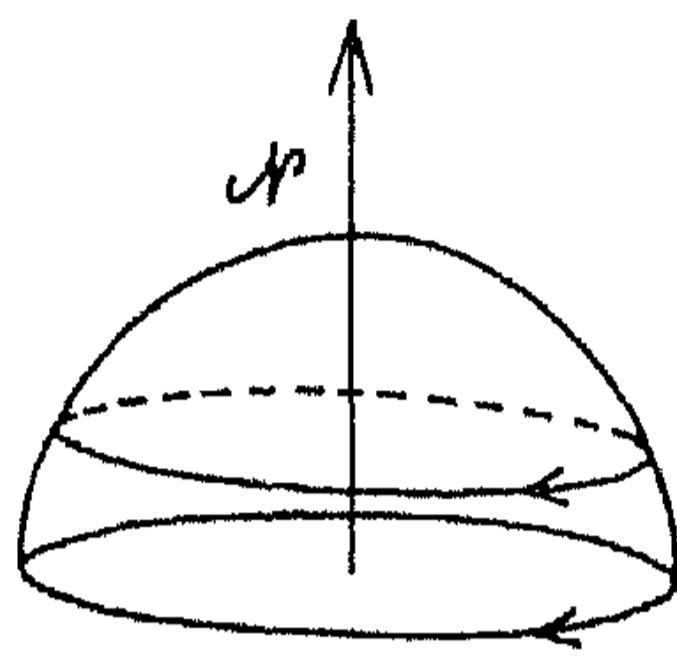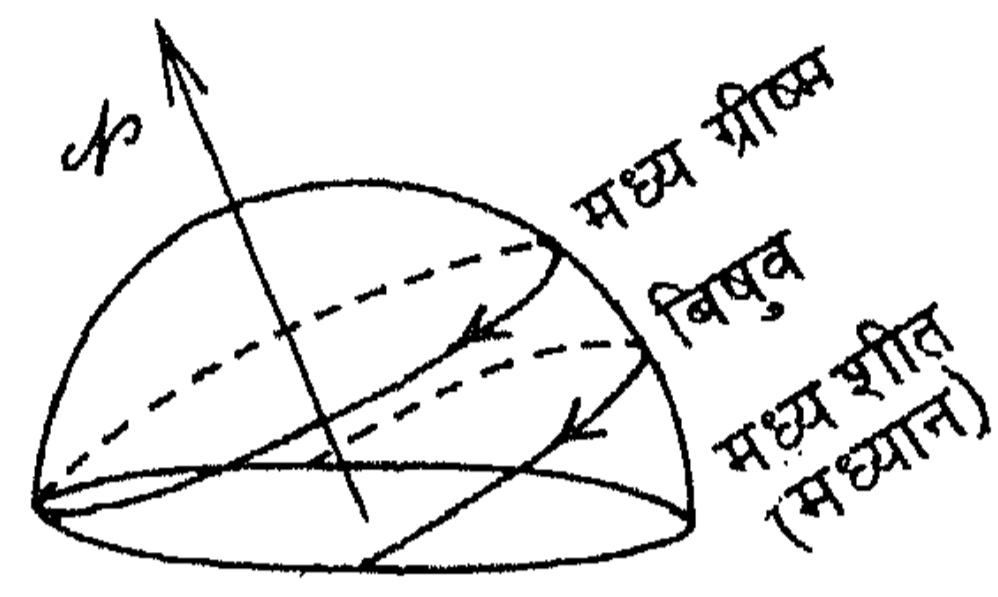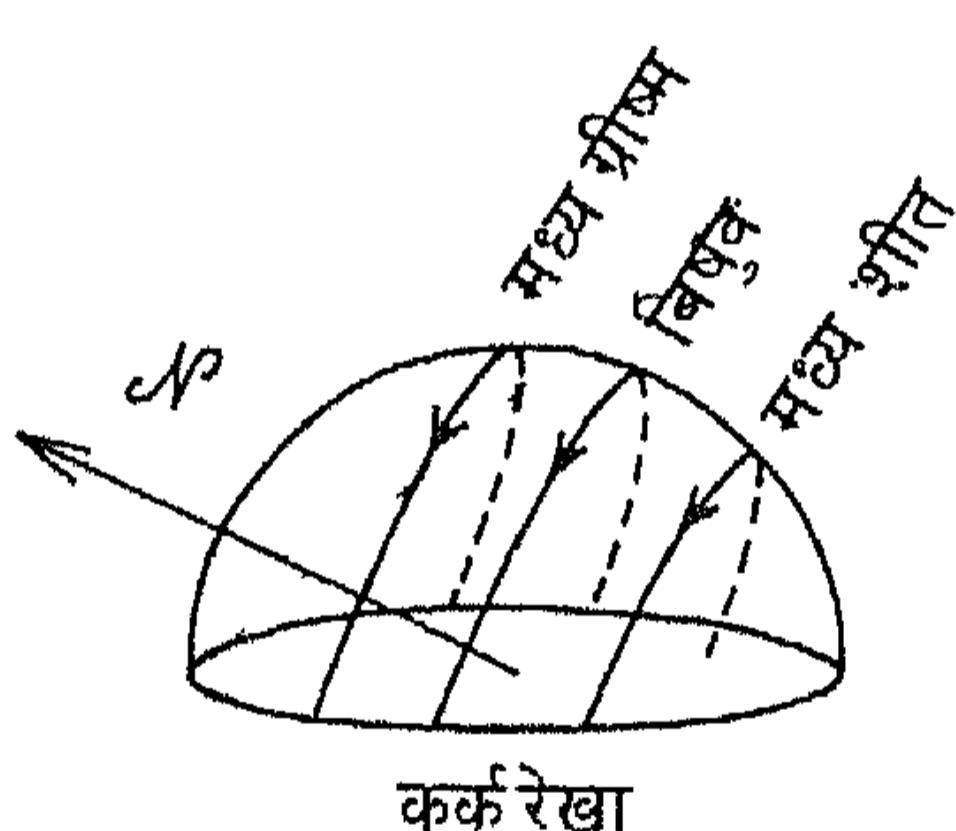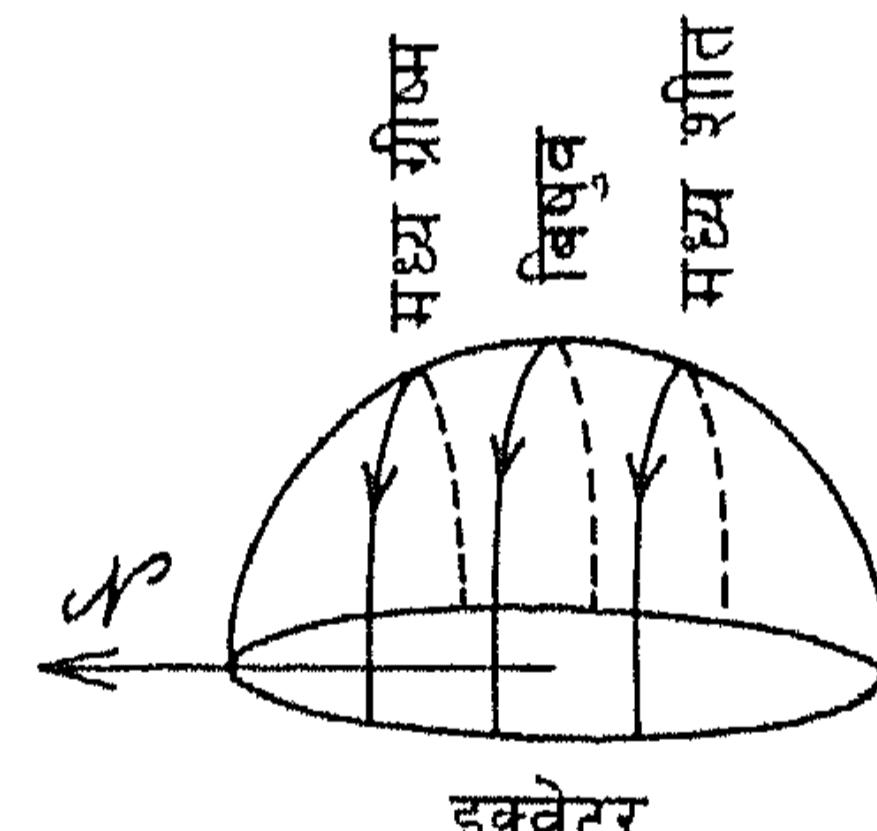
चित्र 6. **सूर्य का आकाश में पथ, पृथ्वी के भिन्न-भिन्न स्थानों से देखने पर**

गणितज्ञ एराटॉस्थिनीस ने पृथ्वी के आकार का परिकलन किया। यह ईसा से 200 वर्ष पहले हुआ।
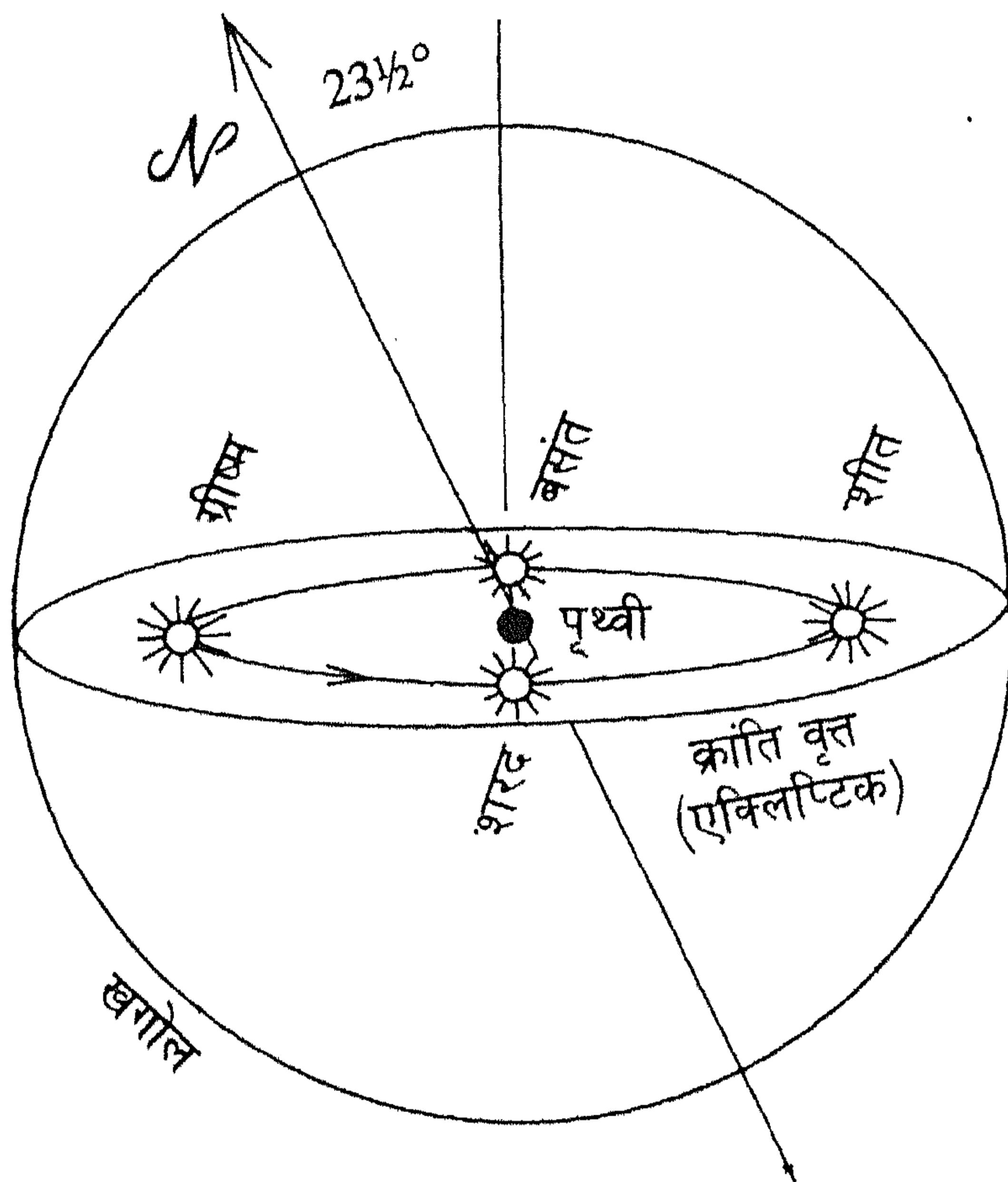
चित्र 7. भूकेन्द्रित चित्र, सूर्य एक वर्ष में पृथ्वी के चारों ओर यात्रा पूरी करता है

कुछ और प्रमाण मिलने पर यही निष्कर्ष निकला कि पृथ्वी गोल है। जैसे, कोई जहाज़ बन्दरगाह से छूटे तो वह क्षितिज में डूबता नजर आता है और चन्द्रग्रहण के समय पृथ्वी की छाया चन्द्रमा पर गोल पड़ती है। इन
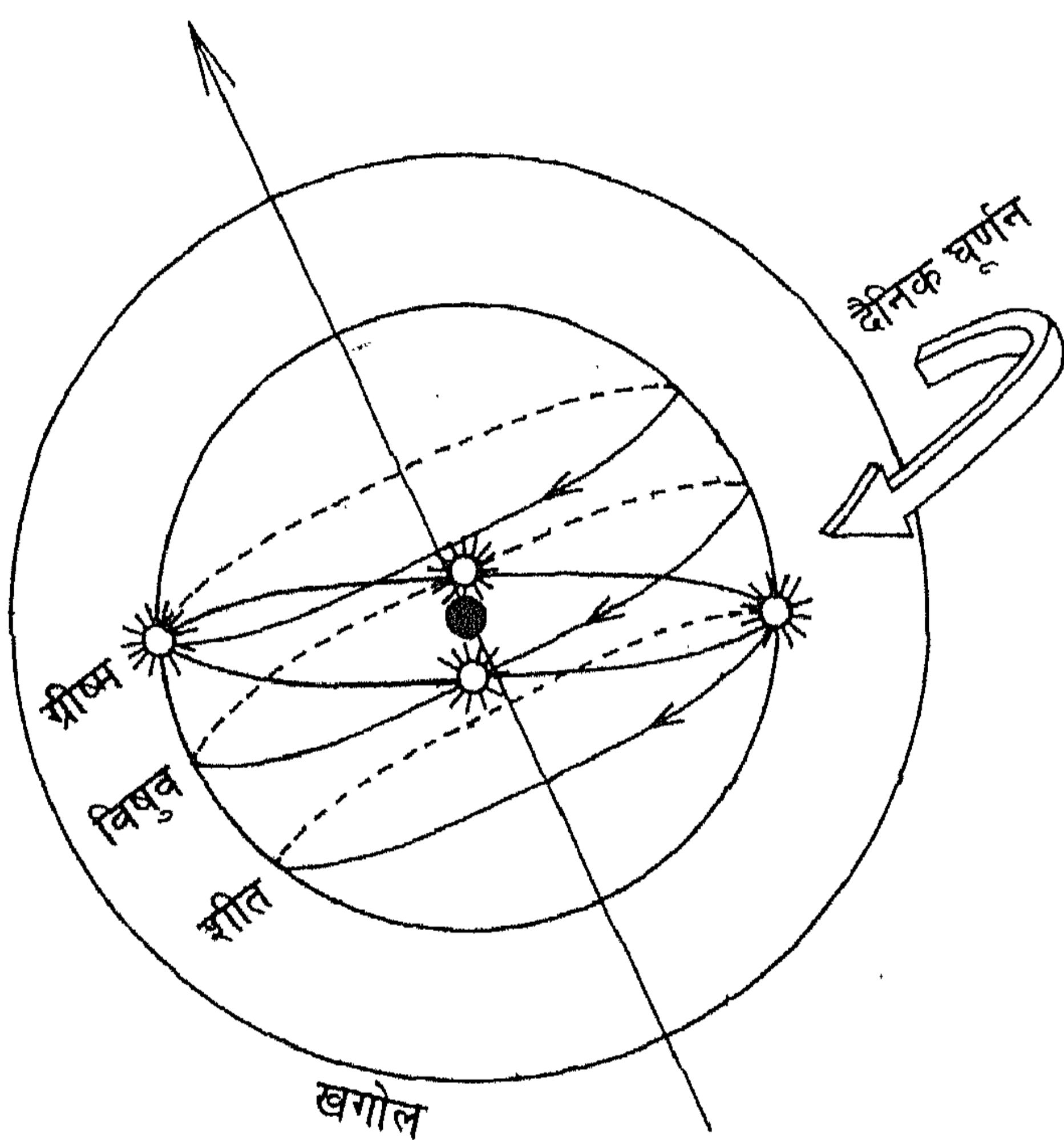
चित्र 8. **खगोल का दैनिक घूर्णन**

तथ्यों के आधार पर यह विचार छोड़ना पड़ा कि पृथ्वी चपटी है और खगोलिक अर्ध गोल से ढकी है। इसके बजाय यह सिद्ध हो गया कि पृथ्वी गोल है और उसके चारों तरफ खगोलिक आकाश है। खगोलीय गोल
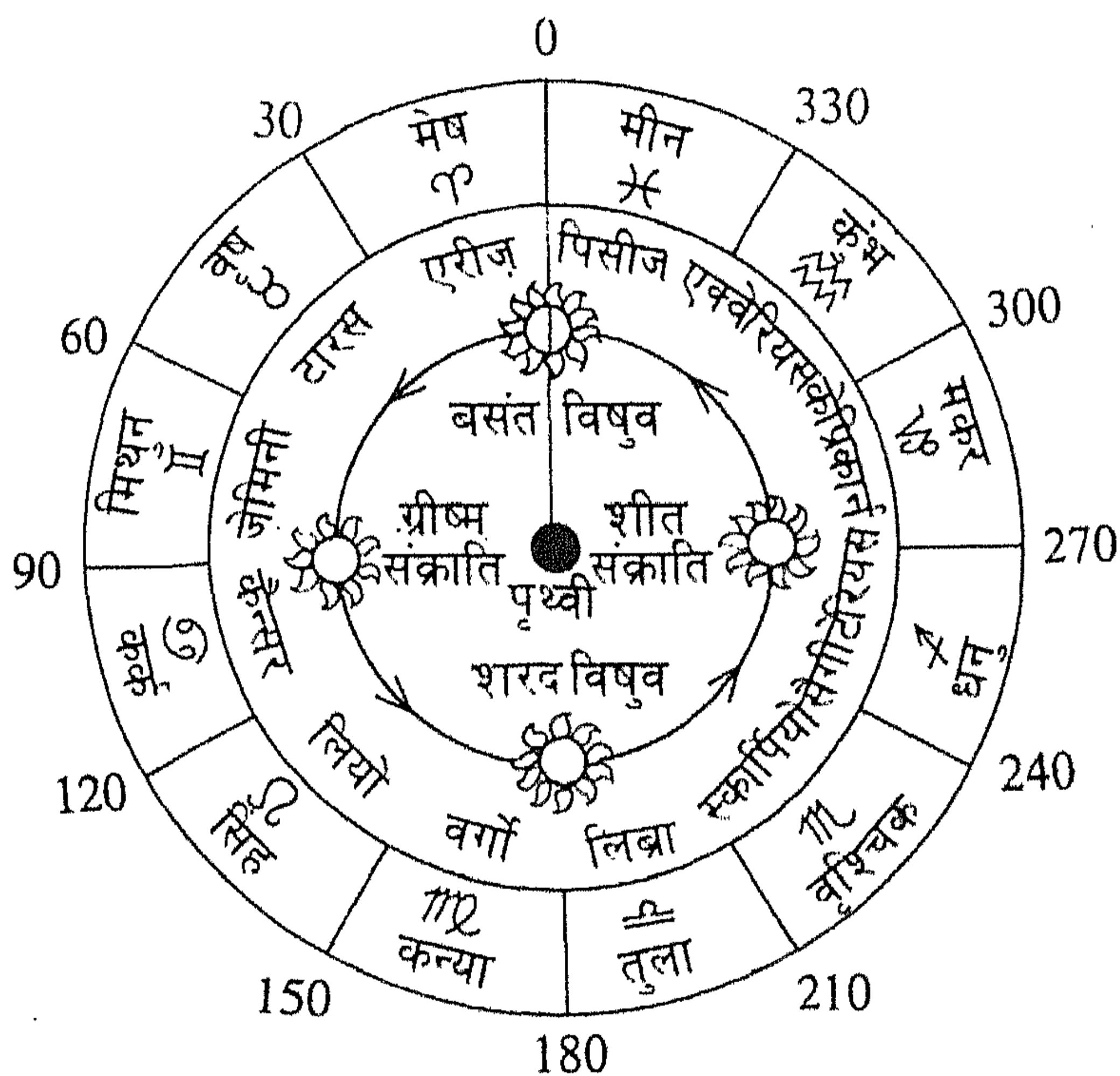
चित्र 9. **तारा मंडल के बीच में सूर्य का वार्षिक पथ**

(celestial sphere) के अन्दर सूर्य पृथ्वी के चारों ओर वार्षिक कक्षा में घूमता है। चित्र 8 के अनुसार, पृथ्वी स्वयं नहीं घूमती अपितु उसके चारों ओर खगोलिक तारे और सूर्य घूमते हैं—स्पष्ट हो जाता है।

पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती है यह विचार बाद में आया। भूकेन्द्रीय खगोल के मॉडल द्वारा सूर्य के स्थान का वार्षिक परिवर्तन और उसके हर एक दिन का पथ, उतनी ही आसानी से समझा जा सकता है जितना कि आधुनिक सूर्य केन्द्रित मॉडल द्वारा। खगोलिक गोल का दैनिक आवर्तन, अपने साथ सूर्य को पृथ्वी के चारों ओर एक दैनिक पथ पर ले जायेगा। इस दैनिक पथ का स्थान हर वर्ष बराबर बदलता रहेगा जैसा कि दिखाई देता है।

सूर्य का 'वार्षिक पथ' खगोलिक गोल पर एक बड़ा वृत्त बनाता है जिसे एक्लिप्टिक (Ecliptic) कहते हैं (चित्र 7 देखिए)। बैवीलोन के खगोलज्ञों ने इस वृत्त को बारह बराबर भागों में बाँटा तथा इन भागों के नाम तारा-मंडलों (जो उन भागों में थे) के आधार पर रखे। यूनानी नाम जो आजकल भी प्रयोग में आते हैं, इस प्रकार हैं : ऐरीज (रैम, भेढ़ा), टारस (बुल्ल, वृष), जेमिनी (मिथुन), केन्सर (केकड़ा), लियो (सिह), विरगो (कन्या), लिब्रा (तुला), स्कोरपियो (वृश्चिक), सेगिटेरियस (धनु), केप्रिकार्न (मकर) एक्वेरियस (कुंभ), पिसिज (मीन)। ये बारह तारा-मंडल आकाश में तारों की पट्टी (बैंड) बनाते हैं, जिन्हें जोडियाक (Zodiac) (यूनानी ''जोडियाकीस कीक्लोस'' पशुओं का वृत) कहते हैं। हर वर्ष सूर्य इन तारा मंडलों से गुज़रता है, जैसा कि चित्र 9 में दिखाया गया है। हम लोग सूर्य को तारों की पृष्ठभूमि में तारों के साथ आकाश में नहीं देख पाते हैं क्योंकि तारे सूर्य के प्रकाश में दिखाई नहीं देते। इन्हें देखना केवल उसी समय संभव है जब पूर्ण सूर्यग्रहण हो। इस समय चन्द्रमा सूर्य को ढक लेता है और सूर्य का

प्रकाश बहुत कम हो जाता है। आकाश के नीले प्रकाश (जो सूर्य का प्रकीर्ण (Scattered) प्रकाश है) की अपेक्षा तारों का प्रकाश बहुत मंद है। इसलिए दिन में तारे दिखाई नहीं देते। इनके प्रकाश के मंद होने का कारण उनकी (सूर्य की अपेक्षा) हमसे बहुत अधिक दूरी का होना है।)

तारा-मंडलों के जो प्रतीक (Symbol) दिखाये गये हैं वे बहुत ही प्राचीन हैं। उनकी उत्पत्ति कब व कैसे हुई, कुछ पता नहीं। लेकिन यह अनुमान किया जाता है कि शायद ये प्रतीक बेबीलोनिया में उत्पन्न हुये।

हिपाकरस (360 ईसा पूर्व) ने सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहों का एक्लिप्टिक स्थान मापने के लिए एक प्रणाली चलायी। इस प्रणाली में सूर्य का स्थान बसन्त ऋतु के विषुव पर 0° माना गया। आकाश में इस स्थान को 'ऐरीज स्थित बिन्दु' कहते हैं। यह प्रणाली आधुनिक खगोल शास्त्र में अभी भी प्रयुक्त होती है।

बसंत विषुव के समय, अगर तारों भरे आकाश की पृष्ठभूमि में सूर्य का स्थान मापा जाये तो यह पता चलता है कि उसका स्थान धीरे-धीरे बदलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जोडियाक (चित्र 9) उलटे दिशा में घूम रहा है।

इसके एक पूर्ण परिक्रमण में 25,800 वर्ष लगते हैं। यह बात प्राचीन बैबीलोनियन खगोलज्ञों को चार या पांच हजार वर्ष पहले मालुम थी। इसको विषुवों का पुरस्सरण (Precession) कहते हैं।

हिपाकरस के समय से अब तक करीब दो हजार वर्ष बीत चुके हैं इसलिए ऐरीज स्थित बिन्दु अब वहां नहीं है। अब यह मीन तारा-मंडल में है और बाद में कुंभ में प्रवेश करेगा।
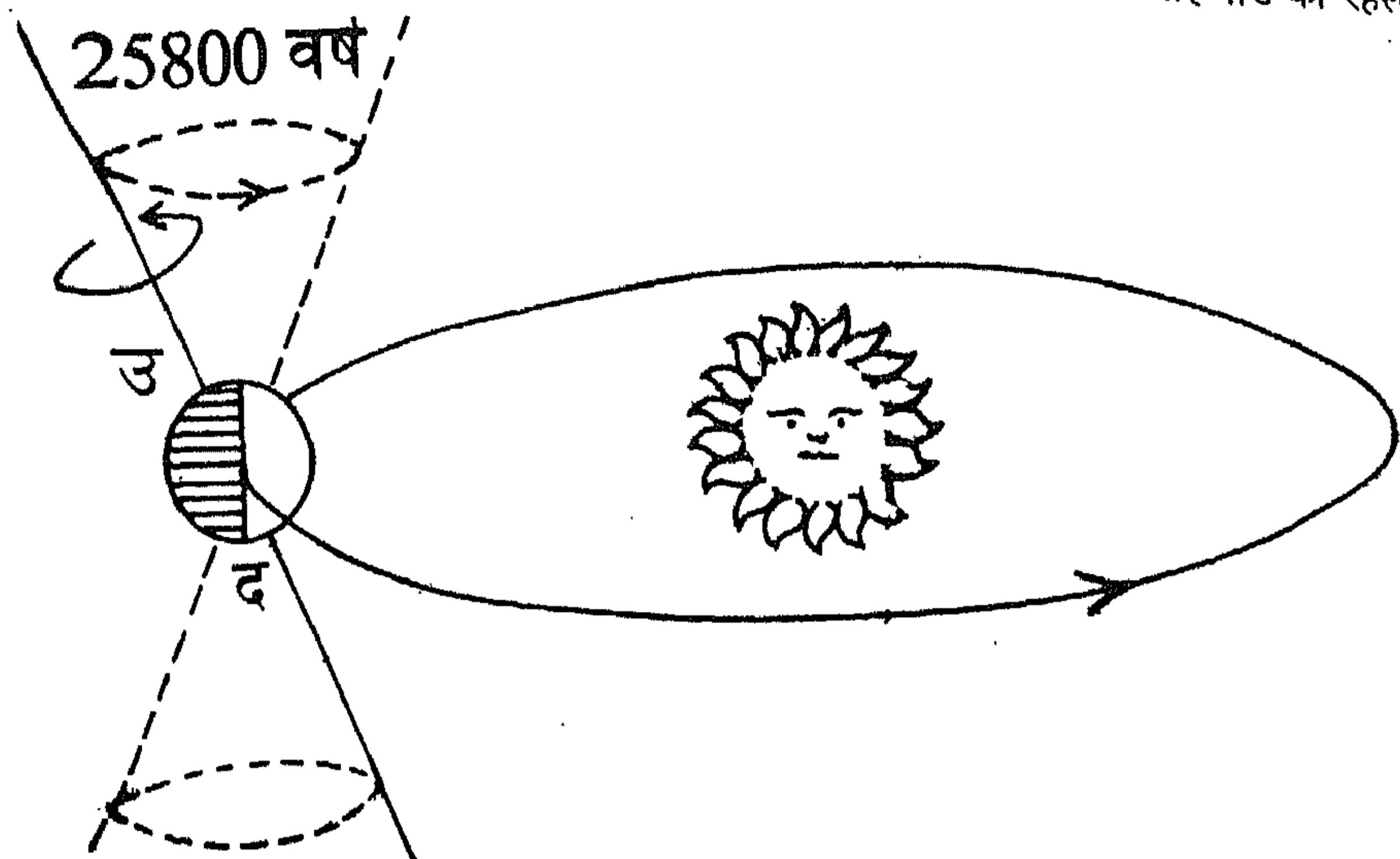
चित्र 10 **विषुव अयन**

विषुवों के पुरस्सरण का कारण पृथ्वी के अक्ष की दिशा का धीरे-धीरे बदलना है, जैसा कि चित्र 10 में दिखाया गया है।

पृथ्वी के अक्ष का पुरस्सरण होने से खगोली ध्रुवों का स्थान बदलता है। उत्तरी ध्रुव एक रेखा बनाता है जो एक 23½° का वृत्त है। उत्तरी ध्रुव को इस वृत्त पर एक बार घूमने में 25,800 वर्ष लगते हैं। चूँकि ध्रुवों का स्थान बदलता रहता है इसलिए पोलारिस हमेशा खगोली ध्रुव का संकेत नहीं करेगा।

हमने पहले यह बताया है कि एक वर्ष उस समय को कहते हैं जो दो उत्तरोत्तर बसंत विषुवों में लगता है। यह औसत 365.2422 दिनों का "सायन वर्ष" (Tropical year) कहलाता है। यही वर्ष ऋतुओं के साथ चलता है और कैलेन्डर के लिए समय की प्राकृतिक इकाई के रूप में इसका

प्रयोग होता है। इसकी अपेक्षा "नाक्षत्र वर्ष" (Siderial year) वह समय है जो सूर्य को जोडियाक के किसी एक स्थान पर लौटने में लगता है। विषुवों के पुरस्सरण के कारण यह समय "सायन वर्ष" से 20 मिनट अधिक है। नाक्षत्र वर्ष 365.2464 दिनों का होता है।

2

चन्द्रमा और ग्रह

चन्द्रमा और ग्रहों का पथ ऐक्लिप्टिक के काफी करीब होता है। हमारे प्राचीन पूर्वज पांच ग्रहों को जानते थे बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति और शनि। उन्होंने उस समय एक अच्छा अनुमान लगाया था कि वह ग्रह जो सबसे तेज़ चलता है वह पृथ्वी के सबसे निकट है। इस प्रकार विश्व का ऐसा चित्र बना जिसमें सात खगोलनीय पिंड पृथ्वी का परिसंचार करते हैं (चित्र 11)। चित्र में हमने ग्रहों के पुराने प्रतीक लिखे हैं।

इस चित्र में सूर्य और चन्द्रमा का जो विवरण दर्शाया गया है उससे चन्द्रमा की कला (phase) का ज्ञान होता है और ग्रहणों की जानकारी भी मिलती है। चन्द्रमा की कला को इसलिए आसानी से समझाया जा सकता है क्योंकि चन्द्रमा गोल है और सूर्य से प्रकाशित है।

चित्र 12 में चन्द्रमा को उसकी कक्षा (Orbit) में दिखाया गया है।
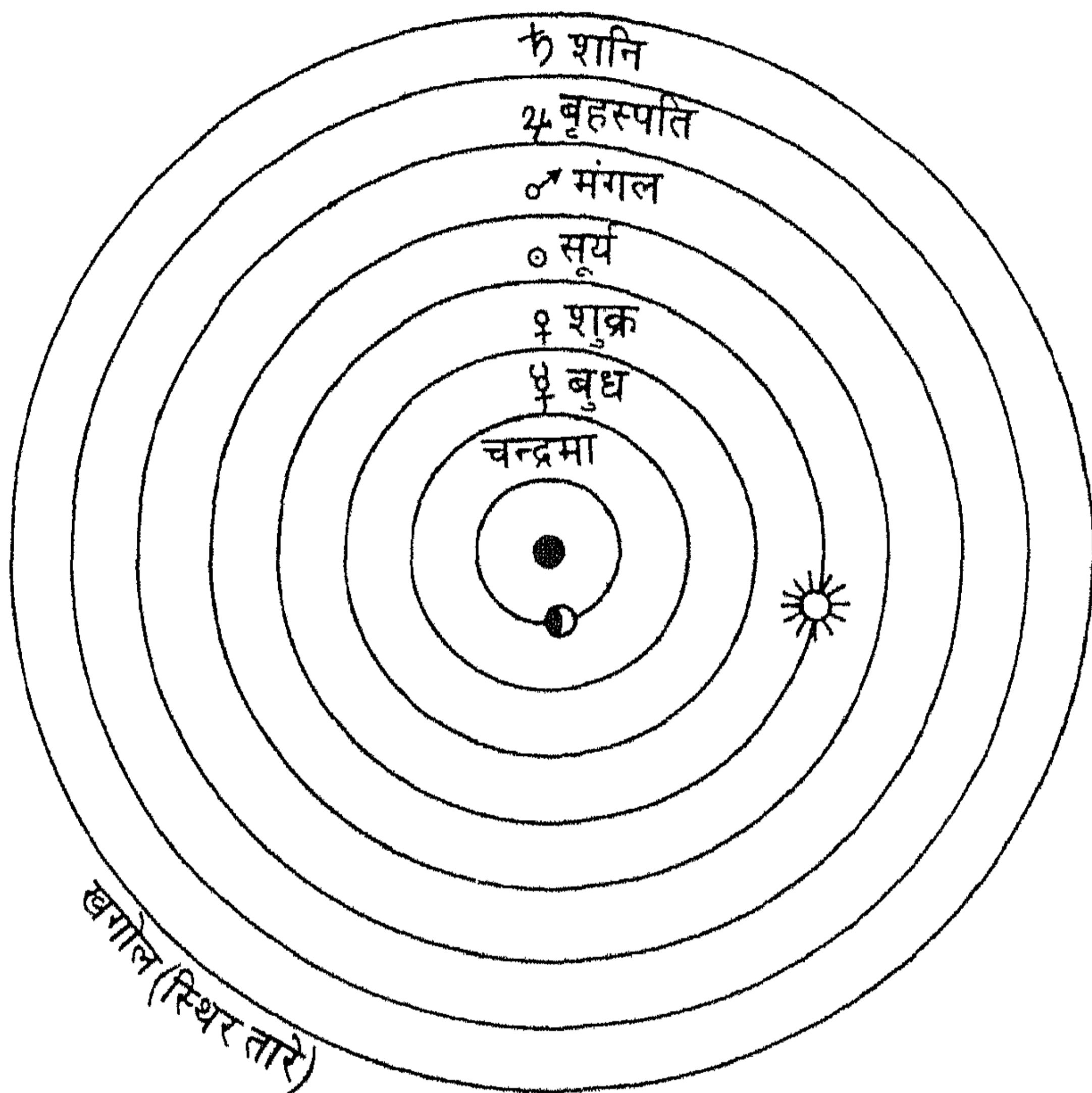
चित्र 11. **प्राचीन भूकेन्द्रित खगोलिक शास्त्र में सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहों की कक्षा**

इससे यह भी पता चलता है कि चन्द्रमा का प्रकाशित भाग महीने के भिन्न-भिन्न समय में कैसा लगता है।
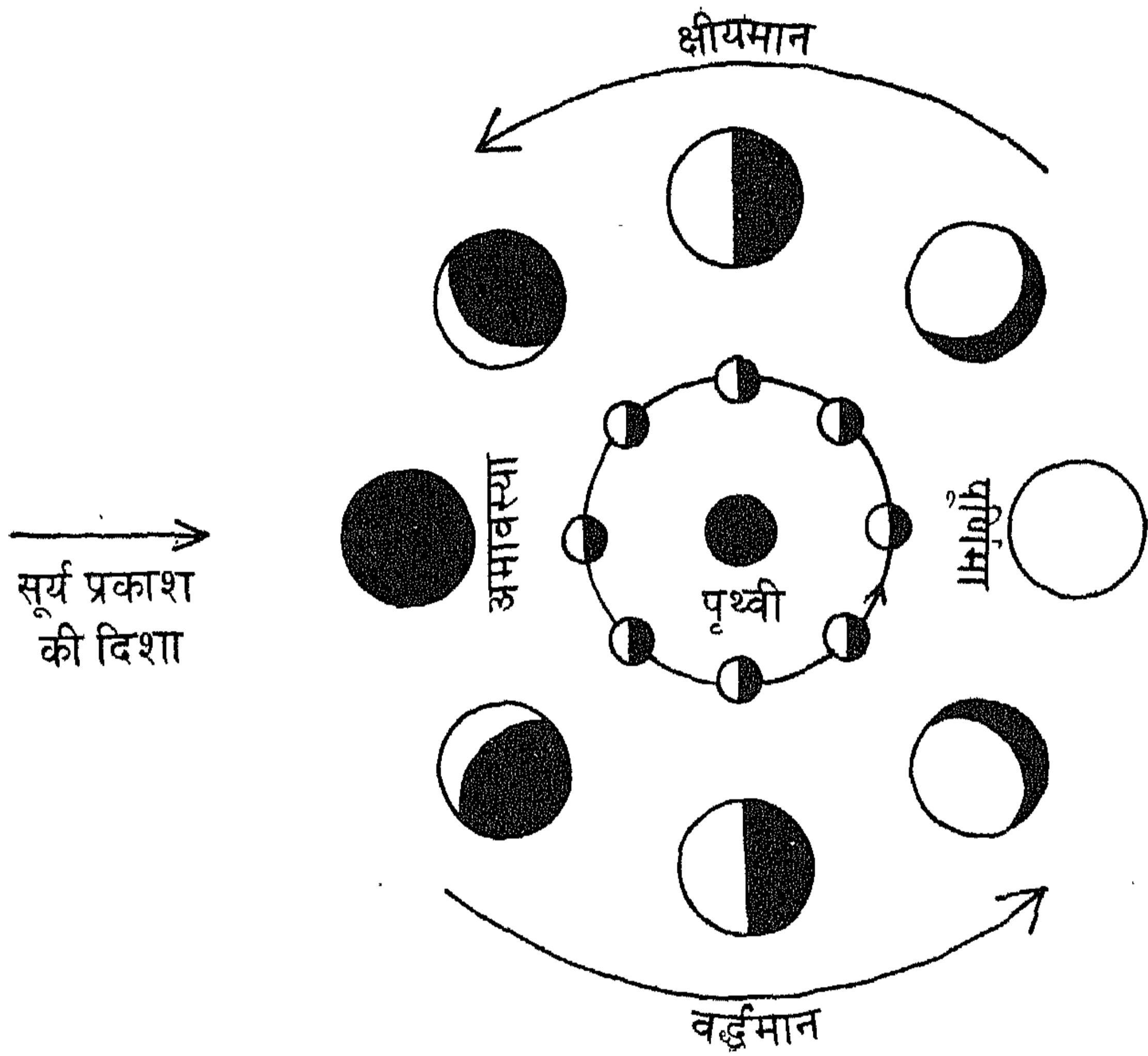
चित्र 12. **चन्द्रमा की कला**

एक पूर्णिमा से दूसरी पूर्णिमा तक का समय 'संयुति मास' (Synodic month) कहलाता है। यह 29.5306 दिन का होता है। चन्द्रमा जब पृथ्वी

के चारों ओर अपनी कक्षा में आगे बढ़ता है तब पृथ्वी भी सूर्य के चारों ओर अपनी कक्षा में आगे बढ़ती है। इसलिए चन्द्रमा का पृथ्वी के चारों ओर घूमने का वास्तविक समय इस एक संयुति मास से थोड़ा कम है। चन्द्रमा को 27.3217 दिन लगते हैं। इस समय को नाक्षत्र मास कहते हैं। आर्यभट्ट (476-550, पाटलीपुत्र) ने ग्रहण का कारण बताया था। चन्द्रग्रहण पूर्णिमा के दिन होता है और इस दिन पृथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है। यह हर एक मास में नहीं होता क्योंकि चन्द्रमा की कक्षा का तल, एकलिप्टिक तल से थोड़ा तिरछा है। इसलिये चन्द्रमा अक्सर इस छाया से बाहर होता है। सूर्यग्रहण आमावस्यां (नवचन्द्र) के दिन होता है जब चन्द्रमा सूर्य के सामने आ जाता है।

ब्रह्मांड का जो साधारण चित्र (चित्र 11) दिखाया गया है वह तारों के बीच में ग्रहों की गति समझाने के लिए पर्याप्त नहीं है। कोई भी ग्रह जोडियाक में, बदलती गति से चलता है। कभी-कभी जब वह उल्टी दिशा में चलता है तो इसे पश्चगति (Retrograde motion) कहते हैं। इनमें बुध और शुक्र का एक विशेष स्थान है क्योंकि वे सूर्य की स्थिति से बहुत दूर वाली स्थिति में नहीं दिखाई देते। इसलिये ये पश्चिम में संध्या समय या पूर्व में प्रातः काल दिखाई देते हैं। बुध, सूर्य के 24° के अन्दर और शुक्र, 45° के अन्दर रहता है।

इन बातों को समझाने का पहला प्रयास इयूडोक्सस (408-355 ईसा पूर्व) ने किया। उन्होंने सकेन्द्रीय क्रिस्टलीय गोलों (Concentric Crystal-line spheres) की कल्पना की। सबसे बाहर का गोला खगोलीय गोल था और तारों से युक्त था। सूर्य, चन्द्रमा और ग्रह उनसे छोटे गोलों से संबद्ध थे। प्रत्येक गोला अपने अक्ष पर धुराग्रस्त था और उसके अक्ष के सिरे दूसरे बड़े गोले से सम्बद्ध थे। यदि इसे पृथ्वी पर से देखा जाये (जो खगोलीय गोल का

केन्द्र मानी गई है) तो यह बृहत् प्रणाली किसी भी ग्रह में पश्चगति पैदा कर सकती है। लेकिन ग्रहों की गति को ठीक तरह से प्रागुक्त (Predict) करने के लिए 55 गोलों की आवश्यकता पड़ती है और इसीलिए इनका परिकलन अत्यन्त ही जटिल समझा गया है।
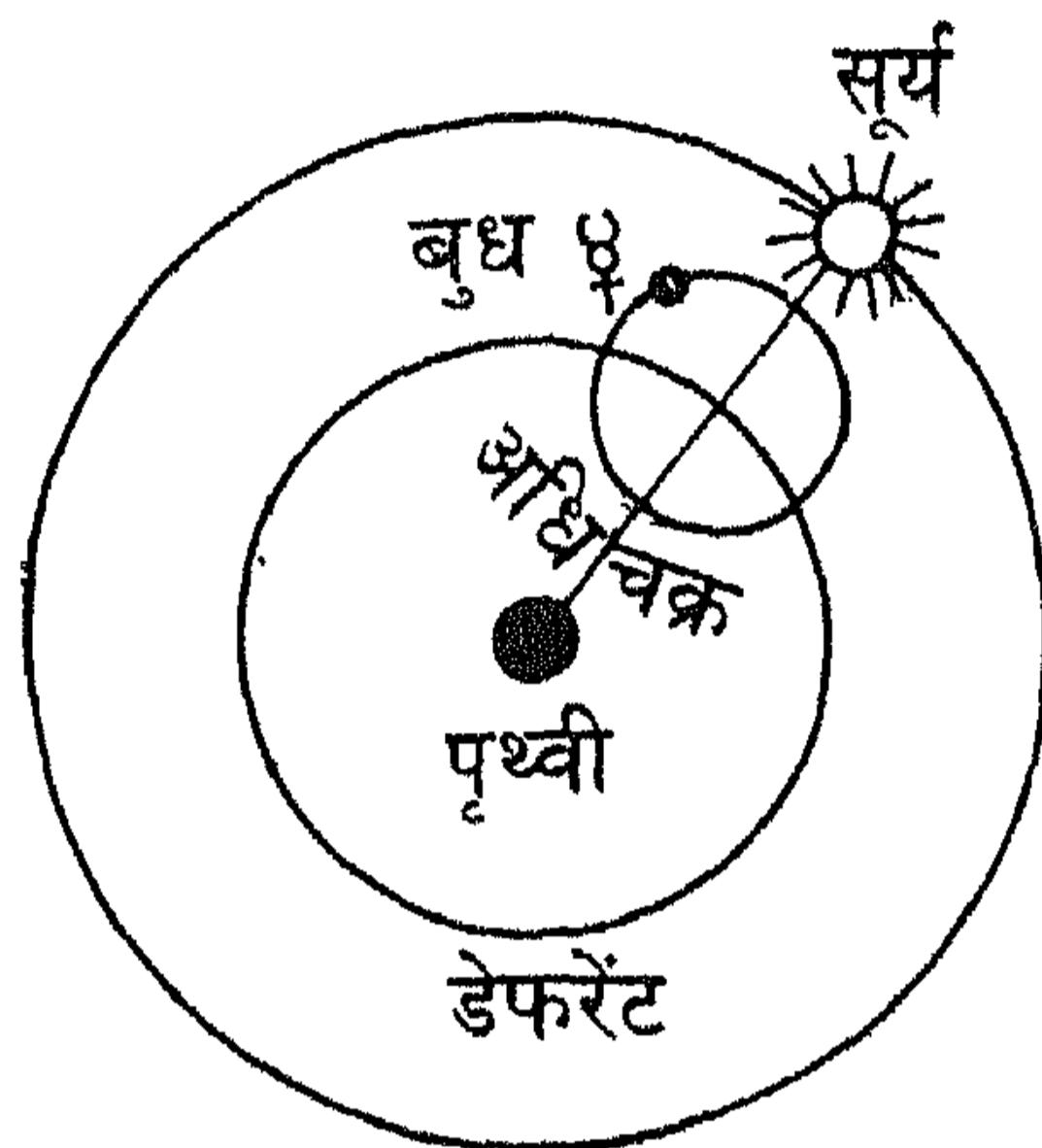
हिपाकरस (150 ईसा पूर्व) का सिद्धांत टोलेमी (100-178 ई.) द्वारा विस्तार करने के बाद, टोलेमिक प्रणाली कहलाने लगा। यह प्रणाली ग्रहों की गति ठीक बुनियादी तरह से प्रागुक्त करने का एक साधन हो गई। 16वीं शताब्दी में जब सूर्य केन्द्रित कोपरनिक्स की प्रणाली आयी तब टोलेमिक प्रणाली का प्रयोग बंद हो गया।

चित्र 13. **बुध और शुक्र के गति के लिए टोलेमी प्रणाली**

टोलेमिक प्रणाली में हर एक ग्रह अपने वृत में चलता है। इस वृत को अधिचक्र (Epicycle) कहते हैं। इस अधिचक्र का केन्द्र एक बड़े वृत में चलता है जिसे डेफरेन्ट (Deferent) कहते हैं। पृथ्वी सभी "डेफरेन्ट" का केन्द्र है। ये बुध के लिए चित्र 13 में दिखायी गई है और चित्र 14 में मंगल के लिए।

जब एक ग्रह पृथ्वी के सबसे निकट होता है तब उसकी पश्चगति कैसे होती है? बुध या शुक्र का सूर्य से एक सीमित कोणीय अंतराल (दूरी) तभी

निश्चित है जब इनके अधिचक्र के केन्द्रों को सूर्य के साथ घूमने दिया जाये। ऐसा करने से पृथ्वी, अधिचक्र का केन्द्र और सूर्य एक ही रेखा पर रहेंगे।

किसी बाहरी ग्रह जैसे मगल, बृहस्पति या शनि की उनके अधिचक्र के चारों ओर की गति को नियमित करने के लिए जरूरी है कि इस ग्रह की, अधिचक्र के केन्द्र के साथ जोड़ने वाली रेखा, पृथ्वी और सूर्य को मिलाने वाली रेखा के समानान्तर हो। एक और प्रतिबन्ध इस सिद्धान्त में है। इसमें
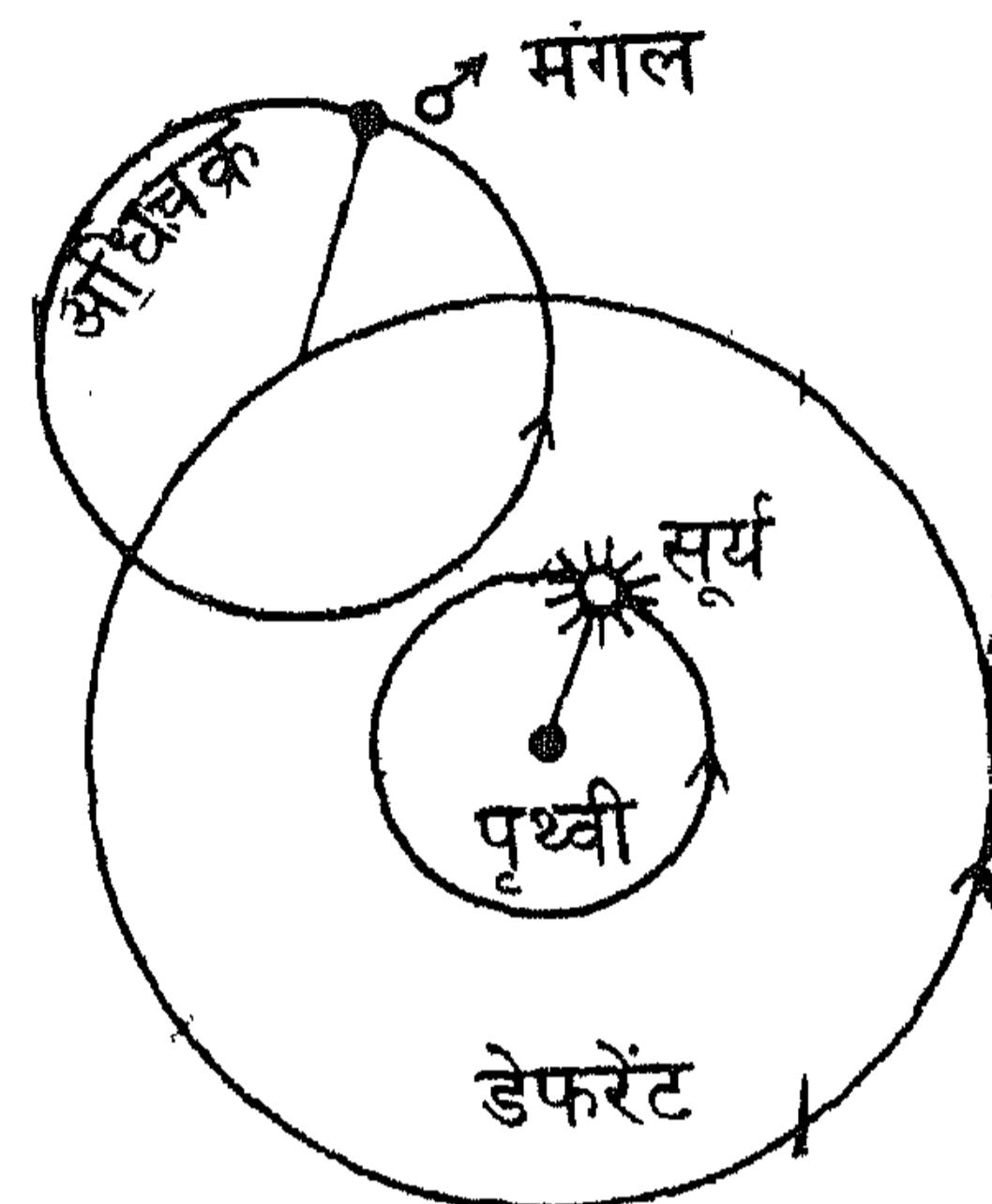
चित्र 14. बाहरी ग्रहों के लिए टोलमी प्रणाली

विभिन्न "डेफरेंट" के केन्द्र पृथ्वी के साथ संपाती नहीं होने चाहिए। तब अधिचक्र का केन्द्र डेफरेंट के चारों ओर एक समान घूमेगा। लेकिन ऐसा हमें तब प्रतीत होगा जब हम यह पृथ्वी से नहीं बल्कि उस स्थान से देखें जो अधिचक्र के केन्द्र से उतनी ही दूरी पर हो जितना पृथ्वी से, परन्तु पृथ्वी से विपरीत दिशा में।

इस अतिरिक्त प्रतिबंध के साथ टोलेमिक प्रणाली ग्रहों की गति बहुत ठीक प्रागुक्त करती है। इसके लिए कुछ प्राचलों (Parameters) को जानना जरूरी है। जैसे उत्केन्द्रता (Eccentricity), डेफरेन्ट के केन्द्र का पृथ्वी से

विस्थापन एवं इस विस्थापन की दिशा, अधिचक्र और डेफरेन्ट के चारों ओर कोणी घूर्णन की दर, और अधिचक्र और डेफरेन्ट के त्रिज्याओं (Radii) का अनुपात आदि। ये प्राचल हर ग्रह के लिए प्रायुक्त होते हैं। इस संबंध में वास्तविक दूरी जानना जरूरी नहीं है। (टोलेमी के समय ये दूरियां नहीं मालूम थीं।) इसमें कुछ और शोधन किया गया है, जैसे कि वृत्तियों के समतल (Plane) को विभिन्न छोटे कोणों पर झुकाना।

चित्र 15. **डेफरेंट केन्द्र से पृथ्वी का सरन और अधिचक्र केन्द्र की सूक्ष्म गति**

बाद की शताब्दियों में और यथार्थता की खोज हुई। इसके लिए उनका द्वितीयक अधिचक्र (Secondary epicycle) निर्माण करना पड़ा जो पहले अधिचक्र पर घूमता था। इस कारण यह प्रणाली बड़ी ही जटिल हो गयी।
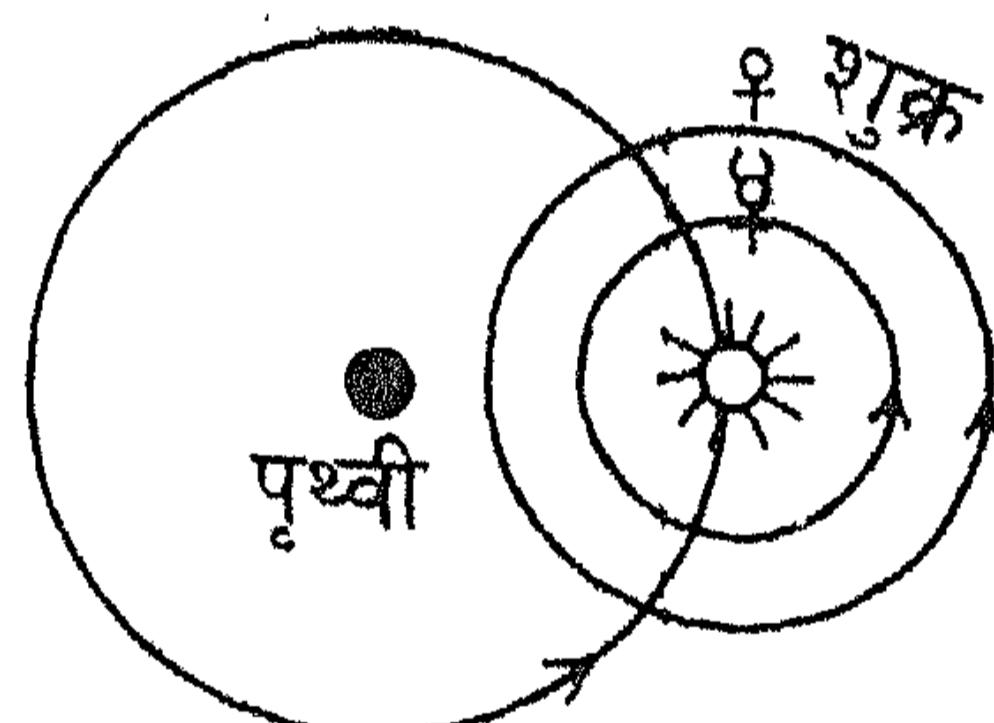
चित्र 16. **हेराकलाइडस की प्रणाली (388-315 ई. पू.), बुध और शुक्र, सूर्य की परिक्रमा करते हैं।**

यदि हम यह कल्पना करें कि सूर्य की कक्षा एवं बुध और शुक्र के

डेफरेन्ट तीन अलग वृत नहीं हैं, बल्कि एक ही हैं, तब काफी सरलता हो जाती है (चित्र 16) और तब हम बुध और शुक्र को सूर्य के चारों ओर घूमते हुए पायेंगे (जबकि सूर्य और दूसरे ग्रह पृथ्वी के चारों ओर)।

हेराक्लाइडस (388-315 ईसा पूर्व) ने कहा था कि बुध और शुक्र, सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। यह विचार टाइको ब्राहे (1546-1601) ने पुनः फैलाया। उनकी प्रणाली में सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता है और ग्रह सूर्य के चारों ओर (चित्र 17)।

चित्र 17. **टाइको की भूकेन्द्रित प्रणाली**

सूर्यमंडल सूर्य केंद्रित है। यह प्राचीन भारतीय खगोलज्ञों को शायद मालुम था (आर्यभट्ट (476-550), वराहमिहिर (505))। लेकिन इसका श्रेय यूरोपियन कोपरनिकस (1473-1543) को मिलता है। कोपरनिकस ने पृथ्वी के बजाय सूर्य को केन्द्र माना। उसके अनुसार पृथ्वी व अन्य ग्रह सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। कोपरनिकस के इन विचारों से खगोल शास्त्र में क्रांति आ गई (चित्र 18)। इस सूर्य केन्द्रित सूर्यमण्डल का विचार प्राचीन यूनानी अरीस्टारकस (310-330 ईसा पूर्व) ने भी सुझाया था, लेकिन जिस पुस्तक में उन्होंने यह बात कही थी वह उपलब्ध नहीं है। इस बारे में हमें दूसरे लोगों
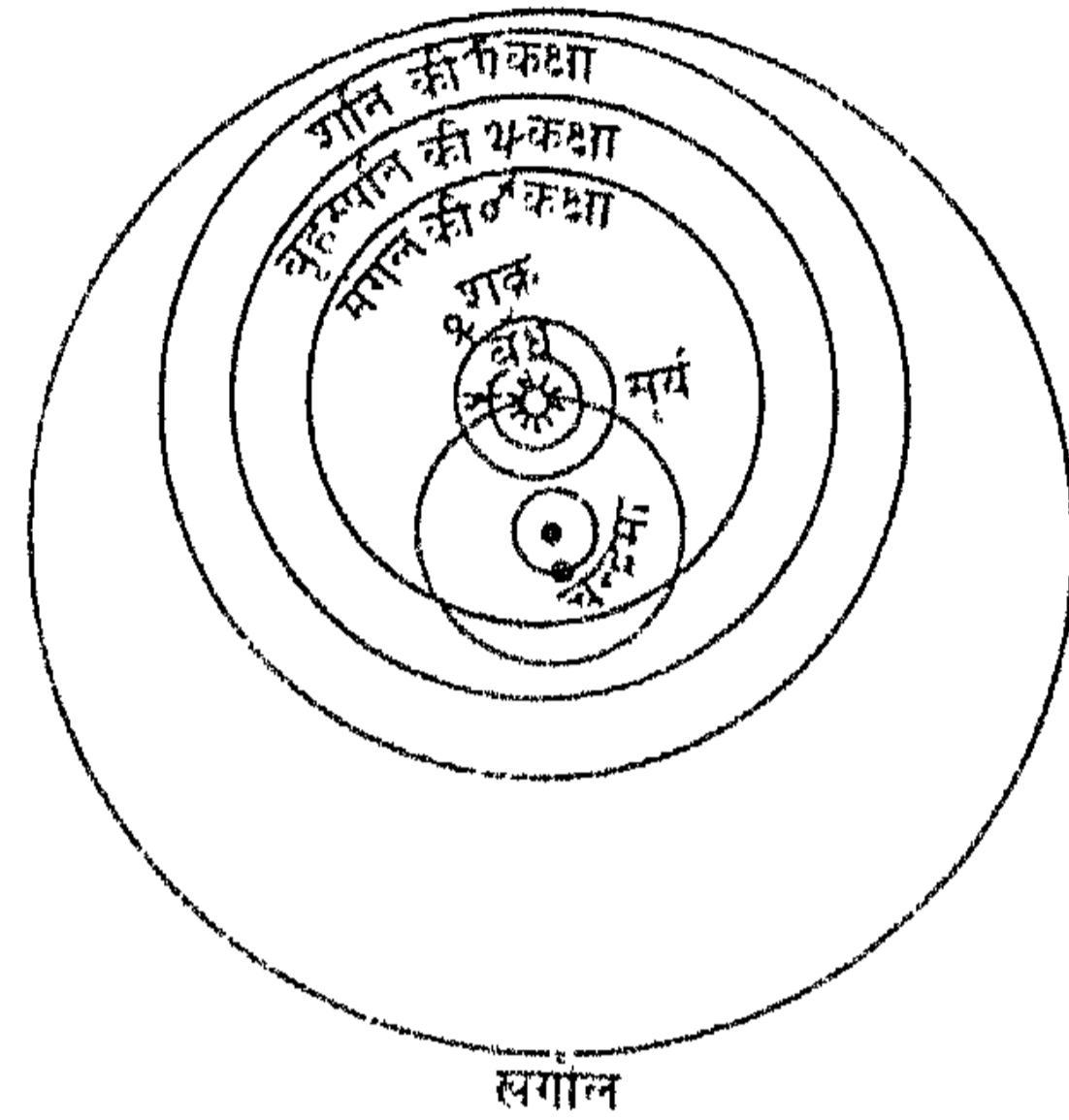
े कथन से ही पता चलता है। लेकिन दूसरे प्राचीन खगोलज्ञों ने इस बात और विचार पर ध्यान नहीं दिया। उन्हें घूमती हुई पृथ्वी असम्भव नहीं लगी।

यह समझना जरूरी है कि गणित के विचार से कोपरनिकस (सूर्य-केन्द्रित) प्रणाली और टोलेमिक (भूकेन्द्रित) प्रणाली दोनों ही एक दूसरे के समतुल्य हैं। टोलेमिक प्रणाली का ऐसा पुनर्विन्यास किया जा सकता है कि बुध और शुक्र, सूर्य के चारों ओर घूमें (चित्र 16) जिससे कि मंगल, बृहस्पति और शनि के अधिचक्र सूर्य की कक्षा के बराबर हो जाएं। इसके बाद सूर्य की गति को पूरे मंडल के वृत्त से घटाने पर हम कोपरनिकस की प्रणाली पर पहुँचेंगे। इसके अलावा भी हम कोपरनिकस प्रणाली पर ग्रहों की सूर्य से आपेक्षित दूरी सही मिलने पर पहुँच सकते हैं। यह अनुमान किया जाता है कि कोपरनिकस ने अपना सिद्धान्त बनाने में इसी रास्ते का प्रयोग किया होगा।

चित्र 18. **कोपरनिकस की सूर्यकेन्द्रित प्रणाली**

सही व यथार्थ भविष्यवाणी करने के लिए, सूर्य केन्द्रित प्रणाली में भी अधिचक्रों की आवश्यकता पड़ी। लेकिन अब अभिकलन काफी आसान हो गया है।

दूसरी बड़ी प्रगति केप्लर (1571-1630) द्वारा हुई। वे टाइको ब्राहे के छात्र थे। टाइको ने ग्रहों की गति को बड़ी सावधानी से देखा और अंकित किया। केप्लर ने सोचा कि, कोपरनिकस प्रणाली में ऐसा कौन-सा परिवर्तन किया जा सकता है जिससे उसकी प्रागुक्ति टाइको के अंकित किये हुए आंकड़ों (Data) से मिले। केप्लर के ज्यादातर प्रयास मंगल की कक्षा के विषय में हुए। वे कई वर्ष तक लगातार काम करने के बाद तीन सरल व सुन्दर नियमों पर पहुँचे। इनका नाम अब केप्लर का नियम "ग्रहों की गति का नियम" पड़ा। उनकी पुस्तक "मंगल ग्रह की गति-नया खगोल शास्त्र" 1609 में प्रकाशित हुई।

केप्लर ने यह समझ लिया था कि ग्रह जिस पथ पर चलते हैं वह वृत नहीं है। उनकी कक्षा की आकृति दीर्घवृत (Ellipse) है। केप्लर के तीन नियम इस प्रकार हैं :

(1) हर एक ग्रह दीर्घवृत में घूमता है। सूर्य इसकी एक नाभि पर है।
(2) ग्रह की गति ऐसी रहती है कि सूर्य और ग्रह को आपस में जोड़ने वाली रेखा बराबर समय में बराबर क्षेत्र तय करती है।
(3) ग्रह के चारों ओर एक पूर्ण परिक्रमण के समय का वर्ग ग्रह से सूर्य तक की औसत दूरी के घन (Cube) का समानुपाती है।

***चित्र 19.* केप्लर के नियम : एक ग्रह सूर्य के चारों ओर इलिप्स में घूमता है। सूर्य एक नाभि (फोकस) पर रहता है। यह ग्रह बराबर समय में बराबर क्षेत्र प्रसर्प करता है।**
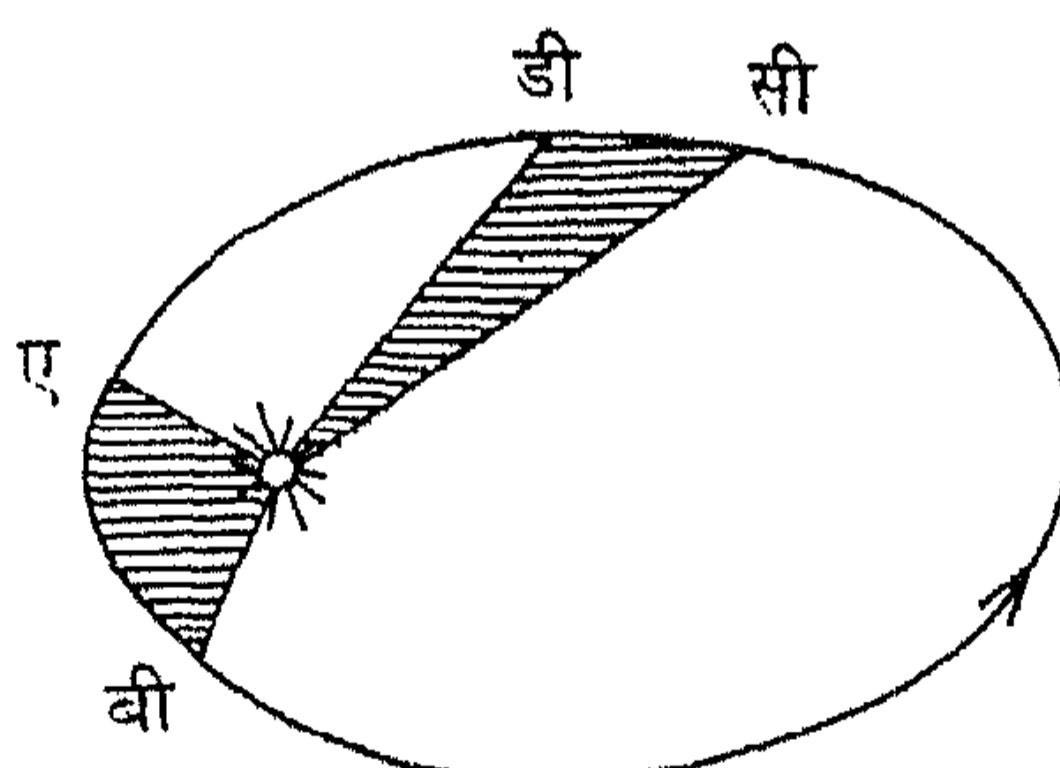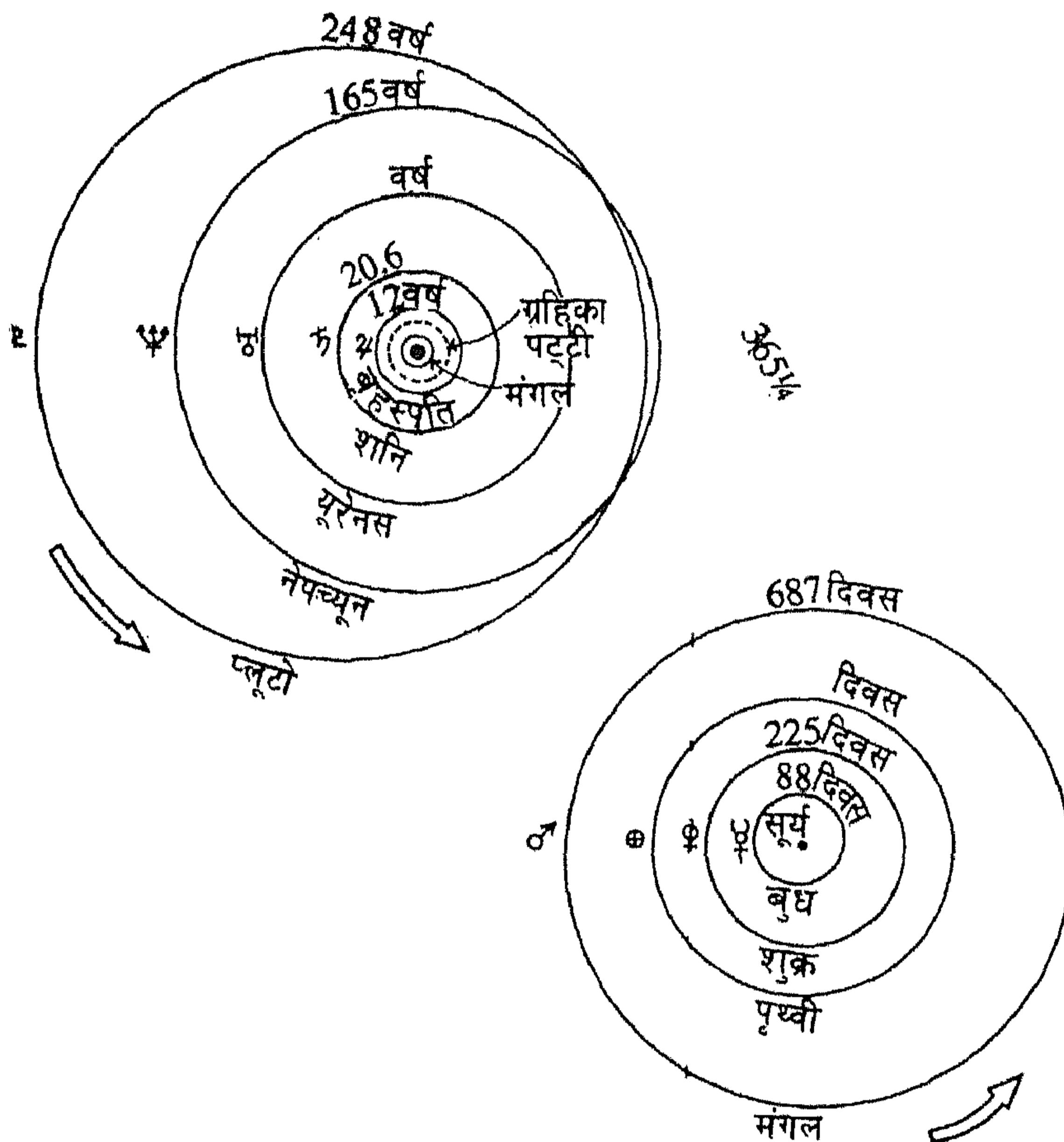
चित्र *20.* **सूर्य मंडल—स्केल के अनुसार कक्षा करीब वृत्तिक है, पृथ्वी के कक्ष की त्रिज्या 15 करोड़ किलोमीटर है।**

चित्र 19 में पहला और दूसरा नियम समझाया गया है। यदि दोनों छायामय क्षेत्र (shaded areas) बराबर हों तो दूसरे नियम के अनुसार एक ग्रह का "ए" से "बी" तक जाने का समय, "सी" से "डी" तक जाने के समय के बराबर होगा।

ग्रहों की कक्षा के दीर्घवृत करीब-करीब वृत जैसे हैं। दीर्घवृत के आमाप (size) को देखते हुए दोनों नाभियां (Foci) करीब हैं। लगभग वृत्तिक कक्षा के लिए टोलेमी के नियम (चित्र 15 देखें), केप्लर के पहले दो नियमों के काफी करीब हैं। यह समझना कठिन है कि टोलेमी ने इस बात को कैसे सोचा।

चित्र 20 में हमने आधुनिक सूर्यमण्डल को दिखाया है। इसमें सूर्य से ग्रहों की दूरी स्केल के अनुसार है। इसमें तीन नये ग्रह यूरेनस, नेपच्यून और प्लूटो, उनकी कक्षाऐं, आंवर्तकाल (Period) और दूरियाँ दिखाई गईं हैं।

□□

3

गुरुत्व

पिछले भागों में हमने यह देखा कि हजारों वर्ष के प्रेक्षण और चमत्कारी सैद्धान्तिक निगमन के बाद ही सूर्यमण्डल का आधुनिक चित्र मिला। इसमें, सूर्य केन्द्र में है और इसके चारों ओर पृथ्वी और अन्य ग्रह दीर्घवृत्तिक कक्षा में घूमते हैं। लेकिन केप्लर के समय यह ज्ञात नहीं था कि ग्रहों की ऐसी गति किस बल (Force) के कारण होती है। आधुनिक गतिक शास्त्र (Dynamics) हमें किसी पदार्थ की गति और उस पर लगने वाला बाहरी बल, उनका सम्बन्ध, और गुरुत्व का सिद्धान्त जो ग्रहों और चाँद की कक्षीय गति पर आधारित है, समझाने में मदद करता है। जिस वैज्ञानिक ने इस सिद्धान्त को दिया उसका नाम ''सर आइजक न्यूटन (1642-1727)'' था।

न्यूटन का महान कार्य प्रिंसिपिया (Principia*) 1687 में प्रकाशित

*Principia का पूरा लैटिन है– Philosopiae naturalis principia mathematica — the mathematical principle of natural philosophy.

हुआ। न्यूटन के पहले यह धारणा थी कि किसी भी वस्तु को गति की अवस्था में रखने के लिए उसके ऊपर किसी बल का प्रयोग करना आवश्यक है और यदि वह बल हटा दिया जाए तो वह वस्तु विराम की अवस्था में आ जायेगी। न्यूटन को यह बात सूझी कि ऐसा नहीं हो सकता है क्योंकि अगर किसी वस्तु की गति सीधी रेखा में है और स्थायी है तो यह उस वस्तु की प्राकृतिक अवस्था है। इसके लिए किसी बल की आवश्यकता नहीं है। न्यूटन के अनुसार किसी वस्तु पर बल लगाने से उसकी गति में त्वरण (Acceleration) होता है।

न्यूटन के तीन प्रसिद्ध नियम इस प्रकार हैं :

1. यदि किसी वस्तु पर कोई बाहरी बल न लगाया जाये तो वह जिस अवस्था (विराम अवस्था या स्थायी अवस्था) में है उसी में बनी रहेगी।
2. किसी वस्तु पर बल लगाने पर वह त्वरित होती है। उस बल का परिणाम, उस वस्तु के द्रव्यमान को उसके त्वरण से गुणा करने पर प्राप्त होता है। इसको एक समीकरण में दिखाया जा सकता है।

$$F = ma$$

यहाँ F, बल परिमाण (Force); m, द्रव्यमान (mass) तथा a, त्वरण परिमाण है।

3. क्रिया और प्रतिक्रिया बराबर और विपरीत होते हैं। उदाहरणस्वरूप जब आप खड़े होते हैं तब आपके पांव जमीन पर नीचे की ओर बल लगाते हैं और जमीन, विपरीत और बराबर बल ऊपर की ओर लगाती है।

न्यूटन के गुरुत्व सिद्धांत से हमें यह समझने में मदद मिलती है कि क्यों

स्तुओं को हाथ से छोड़ने या फेंकने पर वे जमीन पर गिरती हैं? चन्द्रमा ौर ग्रहों की कक्षा, जैसी वे हैं, वैसी क्यों हैं? इनका उत्तर है कि एक वस्तु सरी वस्तु को आकर्षित करती है। इस आकर्षण का बल, उन दोनों वस्तुओं ; द्रव्यमान के समानुपाती और उनकी दूरी के वर्ग के व्युत्क्रमानुपाती होता ।

से समीकरण में हम इस प्रकार व्यक्त करते हैं, $F = \frac{GMm}{r^2}$

हाँ M, द्रव्यमान प्रथम वस्तु का; m, द्रव्यमान द्वितीय वस्तु का;
r, उनके बीच की दूरी एवं G, गुरुत्व स्थिरांक है।

प्रतिदिन प्रयोग में आने वाली वस्तुओं के बीच गुरुत्व बल इतना ग्मज़ोर है कि उन पर हम इसका असर नहीं देख पाते हैं। लेकिन पृथ्वी तनी विशाल है कि वह साधारण वस्तुओं पर अपने गुरुत्व बल का असर ःखाती है। इस गुरुत्व बल के कारण हम जमीन पर खड़े हो सकते हैं तथा ोई भी चीज हाथ से छूटने पर पृथ्वी पर गिर जाती है।

जो दो समीकरण हमने ऊपर दिये हैं, उनसे पता चलता है कि जमीन र गिरने वाली वस्तु के लिए त्वरण

$$a = \frac{GM}{R^2} \text{ है।}$$

जहां M, पृथ्वी का द्रव्यमान है तथा R, पृथ्वी की त्रिज्या (radius) है। सीलिये सभी वस्तुएं जो पृथ्वी पर गिरती हैं उनके त्वरण का परिमाण एक ी सा होता है। उनका त्वरण-परिमाण उनके आमाप (size), आकार या व्यमान पर निर्भर नहीं करता है। यह नियम गैलीलियो गैलिली (1564-

1642) ने पहले ही ज्ञात कर लिया था। इसके लिए उन्होंने एक बहुत ही सहज प्रयोग किया। कहा जाता है कि उन्होंने पीसा के टॉवर (मीनार) से भिन्न-भिन्न वस्तुओं को गिराया। इन वस्तुओं का द्रव्यमान अलग-अलग था (चित्र 21)। प्रयोग के बाद वे इस नतीजे पर पहुँचे कि इन सभी वस्तुओं को पृथ्वी पर गिरने में एक ही समय लगता है।

न्यूटन ने अपने तीन नियमों और गुरुत्व के समीकरण का प्रयोग करते हुए यह दिखाया कि चन्द्रमा पृथ्वी के आकर्षण में कैसे घूमता है। उन्होंने यह भी अनुमान लगाया कि हर एक ग्रह को सूर्य के गुरुत्व आकर्षण में उसके चारों ओर कैसे घूमना चाहिए। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि उनकी कक्षा दीर्घवृत्त होगी और वे केप्लर के तीनों नियमों का पालन करेंगे।

केप्लर के नियमों का एक रुचिकर अनुप्रयोग, धूमकेतुओं (Comets) की कक्षाओं का अभिकलन (Computation) करना है। धूमकेतु, ग्रहों के मुकाबले में बहुत ही छोटा पिंड है जो सूर्य के चारों ओर घूमता है। जब धूमकेतु
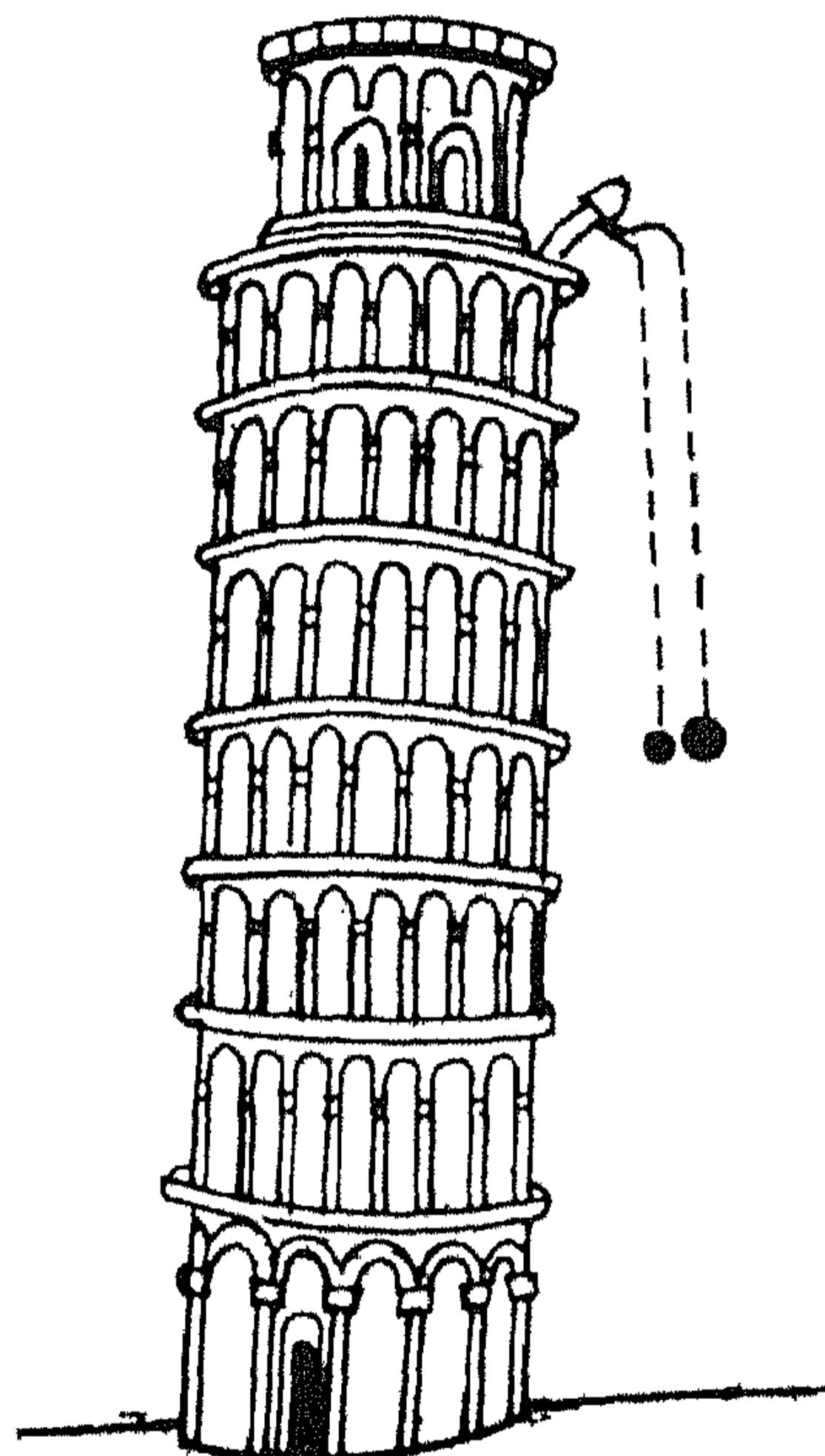
चित्र 21. **गैलेलियो और पीसा का टावर**
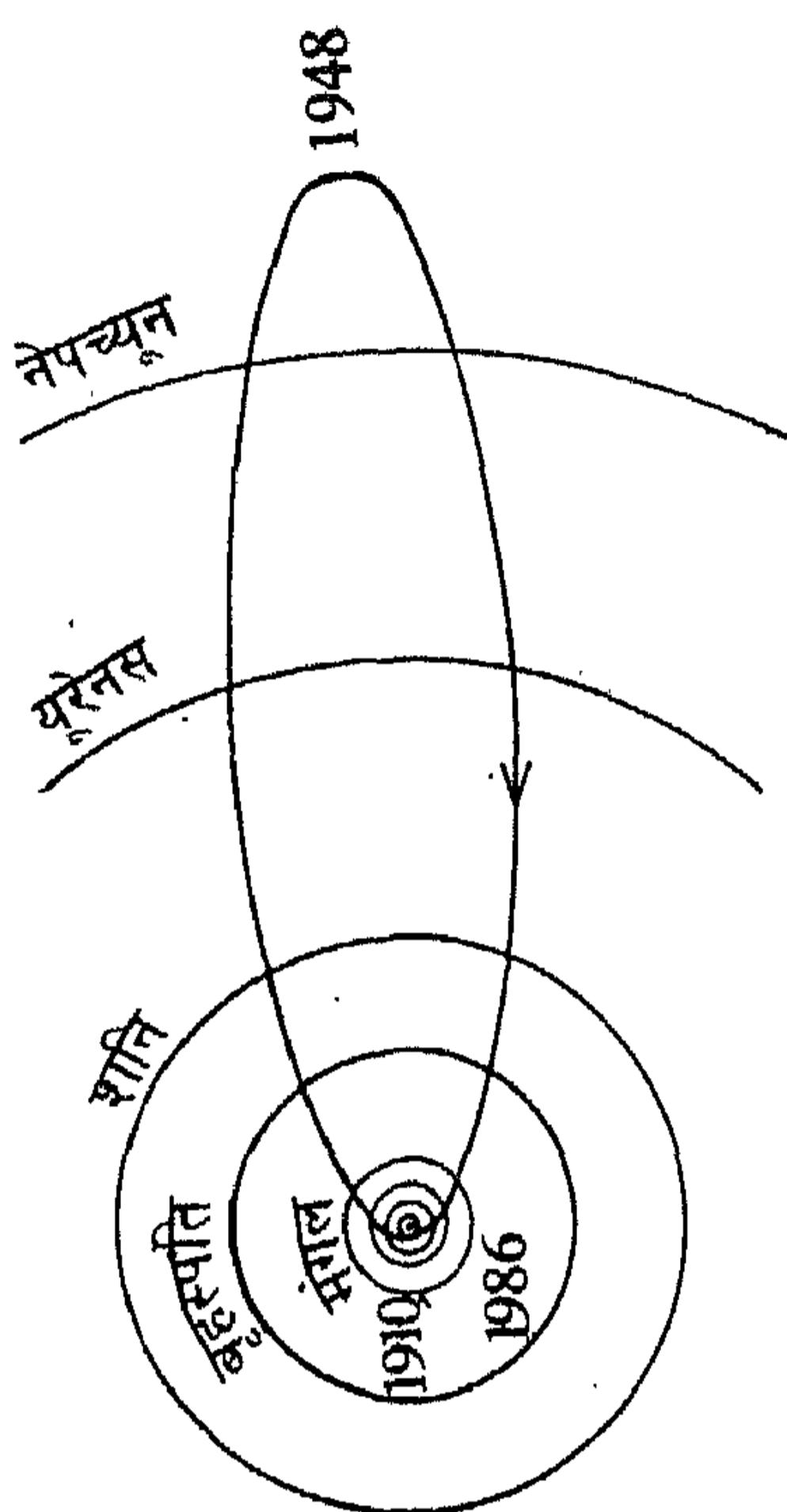
चित्र 22. **हैली धूमकेतु की कक्षा**

सूर्य के काफी निकट होता है तब उसकी एक लम्बी पूँछ बन जाती है। यह इसलिए बनती है क्योंकि धूमकेतु का मुंडक (Head) पत्थर और बर्फ से भरा होता है और सूर्य के निकट जाने पर उसके विकिरण दाब (Radiation pressure) से यह भाप के रूप में बाहर निकलता है। इसलिए ये पदार्थ सूर्य के प्रकाश में पूँछ की तरह दिखते हैं। जैसा कि आप जानते हैं, ग्रहों की कक्षा दीर्घवृत होती है, लेकिन धूमकेतुओं की कक्षा लम्बी (सिगार जैसी) होती है। यह चित्र 22 में दिखाया गया है। एक धूमकेतु का नाम भारतीय खगोलज्ञ वेनु बापू के नाम पर रखा गया है। वेनु बापू ने इसको सबसे पहले देखा था।

चन्द्रमा केवल पृथ्वी के आकर्षण में नहीं घूमता है। थोड़ा सूर्य का आकर्षण भी उसे प्राप्त है। इसलिए चन्द्रमा की गति में केप्लर के नियमों द्वारा प्रागुक्त गति से थोड़ा अन्तर हो जाता है। इसी प्रकार पृथ्वी की गति सूर्य के अलावा, दूसरे ग्रहों से भी प्रभावित होती है। सबसे अधिक प्रभाव बृहस्पति का (जो काफी अस्थूल है) पड़ता है।

यह स्पष्ट है कि यदि हम खगोली पिण्डों (ग्रह, चन्द्रमा, धूमकेतु, तारे इत्यादि) की बहुत ठीक गति जानना चाहते हैं तो गणित का जटिल परिकलन (Calculation) करना होगा। इसमें बड़े और छोटे आकर्षण, सभी का असर लेना होगा। इसीलिए कई शताब्दियों तक खगोली परिकलन करना पड़ा। इसमें विश्व के अच्छे गणितज्ञों ने इन प्रश्नों पर काम किया और इसके बाद ही हम लोगों को आधुनिक खगोल शास्त्र का ज्ञान हुआ।

4

दूरबीन

दूरबीन का आविष्कार होने से पहले खगोल का निरीक्षण करने का एक मात्र साधन था हमारी आंखें। किन्तु अब बड़े-बड़े यंत्रों के बन जाने से हम तारों और ग्रहों का ठीक स्थान जानने में सफल हुए हैं और खगोल के विषय में और भी ज्यादा ज्ञान उपलब्ध हुआ है। डेनमार्क में स्थित अपनी प्रेक्षणशाला (Observatory) में टाइको ब्राहे ने, अपनी आंखों और कोण मापने के बड़े यंत्रों का प्रयोग करते हुए बहुत आंकड़े (data) एकत्रित किये और इन्हीं आंकड़ों का विश्लेषण करके केप्लर अपने प्रसिद्ध नियमों पर पहुंचे।

महाराजा जयसिंह (1660-1743) ने दिल्ली (1724) और जयपुर (1734) में बड़ी प्रेक्षणशालायें बनवायीं (चित्र 23) जिनका नाम जंतर मंतर है। इन विशाल यंत्रों से खगोलीय मापों में कैसे अधिक यथार्थता प्राप्त की जा सकती है, इसका यह जीवन्त उदाहरण हैं। जयसिंह ने ऐसी ही प्रेक्षणशालायें वाराणसी, उज्जैन और मथुरा में भी बनवायीं।
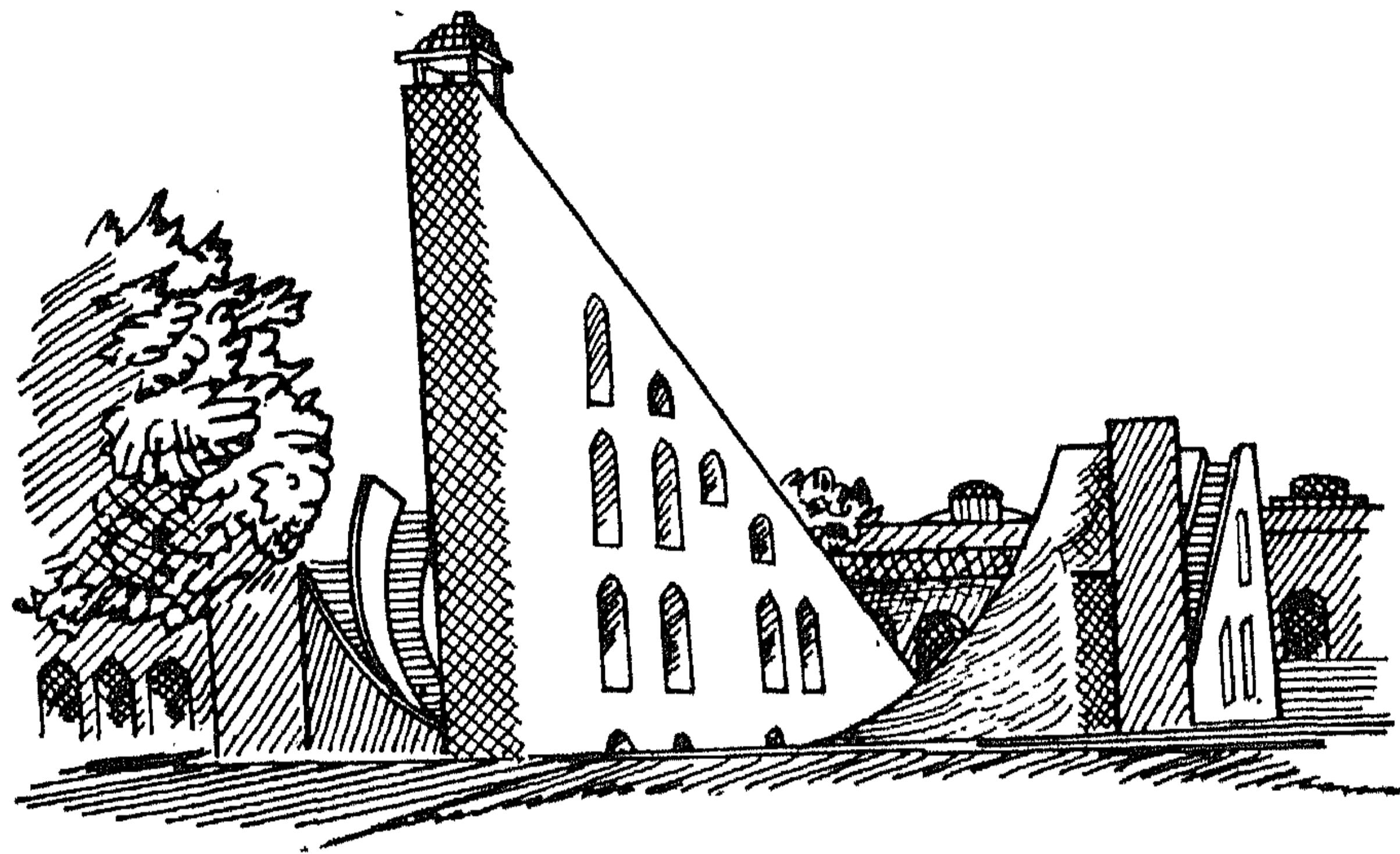
चित्र 23. **बृहत् सम्राट यंत्र विशाल धूप घड़ी, जन्तर मन्तर जयपुर में**

खगोल का आधुनिक प्रेक्षण, दूरबीन के आविष्कार के बाद ही हुआ कई लेन्सों के प्रयोग द्वारा दूर की वस्तुएं समीप दिख सकती हैं, इसका शोध हालैन्ड में 16वीं शताब्दी में हुआ। दूरबीन का पहला खगोलीय प्रयोग गैलीलियो ने किया। इसके लिए उन्होंने स्वयं एक दूरबीन बनायी क्योंकि हालैन्ड में बनी हुई दूरबीन उतनी अच्छी नहीं थी। गैलीलियो पहले व्यक्ति थे जिन्होंने चन्द्रमा के पर्वतों और क्रेटरों को देखा।

उन्होंने दूरबीन से सूर्य के प्रतिबिम्ब को एक पर्दे पर उतारकर पहली

बार सूर्य कलंक (Sun Spots) को देखा। वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने ग्रहों को एक मंडलक (disc) के रूप में देखा। इसके पहले ये ग्रह केवल नेत्र से देखने पर तारों जैसे बिन्दु दिखते थे। गैलीलियो की सबसे चमत्कारी खोज बृहस्पति के चार बड़े उपग्रहों को देखना था, जिनके नाम हैं : यो, योरोपा, गैनीमीड और कैलिस्टो। इससे पहली बार यह सिद्ध हुआ कि पृथ्वी के अलावा और ग्रहों के भी उपग्रह हैं।

सबसे प्राचीन दूरबीनों में अपवर्तन (refraction) का प्रयोग किया जाता था। इनमें एक लेन्स होता था जिससे दूर की वस्तुओं से प्रकाश इकट्ठा किया जाता था। परावर्तन दूरबीन (reflecting telescope) न्यूटन ने बनायी। इसमें अवतल दर्पण (concave mirror) का प्रयोग किया गया। दुनिया में सबसे बड़ी प्रकाशीय दूरबीन 200 इंच की परावर्तिक दूरबीन है, जो अमेरिका में कैलीफोर्निया प्रान्त के पालोमार पर्वत पर स्थापित है।

विलियम हरशैल (1738-1822) ने जेमिनी तारामन्डल में एक ऐसा पिंड देखा जो इसके पहले दिखाई नहीं दिया था। उन्होंने इसे 'धूमकेतु' समझा। लेकिन जब इसकी कक्षा का अभिकलन हुआ तब यह एक नया ग्रह निकला। इसका नाम 'यूरेनस' रखा गया।

यूरेनस के दिखाई दिये जाने के बहुत वर्ष बाद, यह पता चला कि उसकी कक्षा अन्य ग्रहों जैसी नहीं है। न्यूटन के नियमों द्वारा सूर्य के अलावा दूसरे ग्रहों के प्रभाव को सम्मिलित करके, गणना करने पर जो गति निकली वह इसकी गति से नहीं मिली। ऐडम्स (एक अंग्रेज गणितज्ञ) ने सोचा कि यूरेनस की कक्षा में अन्तर किसी अन्य ग्रह (जो अब तक नहीं दिखा है) के कारण हो सकता है। उन्होंने अभिकलन किया और राजकीय खगोलज्ञ को 1845 में सूचित किया कि किस दिशा में इस नये ग्रह को खोजा जाये। लेकिन

राजकीय खगोलज्ञ ने इस पर विश्वास नहीं किया और इसकी खोज के लिए कोई कोशिश नहीं हुई। लेकिन अगले ही साल एक फ्रांसीसी गणितज्ञ, ला वेरियर, अभिकलन करके इसी नतीजे पर पहुंचे। नया ग्रह बर्लिन की प्रेक्षणशाला से देखा गया जैसा कि ला वेरियर ने बताया था। इस नये ग्रह का नाम 'नेपच्यून' (neptune) पड़ा।

यह कहानी इस शताब्दी में फिर दोहरायी गयी। नेपच्यून की कक्षा में भी अभिकलन से अन्तर निकला। परसिवल लोवेल (1855-1916) ने नया अभिकलन किया। इसमें परसिवल लोवेल ने ऐडम और ला वेरियर की तरह एक अज्ञात ग्रह को माना और उसकी दिशा का संकेत दिया। इस प्रकार प्लूटो (pluto) को 1929 में देखा गया। प्लूटो, यूनान में पाताल के देवता हैं। इस नये ग्रह का नाम प्लूटो, परसिवल लोवेल के सम्मान में दिया गया क्योंकि उनके नाम के पहले दो अक्षर P और L से आरम्भ होते हैं।

5

ग्रहिका

1772 में जे.इ. बोडे ने एक नया नियम दिया। यह नियम सूर्य से ग्रहों की दूरी, से संबंधित था। इसे "बोडे का नियम" कहते हैं। यह नियम कैसे काम करता है इसके वैज्ञानिक कारण का अभी तक पता नहीं लगा है। इन निम्नलिखित संख्याओं को लीजिए:

0, 3, 3×2, $3 \times 2 \times 2$, $3 \times 2 \times 2 \times 2$, इत्यादि।
इनमें 4 जोड़िए और 10 से भाग दीजिए। नतीजा :
0.4, 0.7, 1, 1.6, 2.8, 5.2, 10, 19.6, 38.8 इत्यादि।

यदि पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी 1 मानी जाये तो इस माप में ग्रहों की दूरियां (बोडे के समय में) इस प्रकार प्राप्त हुई।

बुध 0.39, शुक्र 0.72, पृथ्वी 1, मंगल 1.54, बृहस्पति 5.2, शनि 9.54।

देखिये, ये संख्याएें बोडे की संख्याओं से कितनी मिलती हैं। जब यूरेनस पहले देखा गया और उसकी दूरी 19.18 ज्ञात हुई तो इससे बोडे के नियम को महत्वपूर्ण पुष्टि मिली। लेकिन नेपच्यून की दूरी 30.6 ज्ञात हुई, जो कि कम है। मंगल और बृहस्पति के बीच में जो अंतराल है (दूरी 2.8) वह विस्मयकारी है। इससे यह संकेत मिलता है कि इस स्थान पर भी कोई ग्रह हो सकता है जो अब तक दिखाई नहीं दिया है। 1 जनवरी 1801 में एक ग्रहिका मिली। इसका नाम सीरीज (ceres) रखा गया। ये सिसिली में पहली बार देखी गयी थी और वहां की देवी का नाम इसको दिया गया। सीरीज दूसरे ग्रहों के मुकाबले बहुत ही छोटी है और इसका व्यास केवल 950 किलोमीटर है। कुछ साल बाद सूर्य से लगभग 2.8 की ही दूरी पर कुछ और ग्रहिकाऐं मिलीं जिनके नाम हैं : प्लास (490), जुनो (190) और वेस्टा (390)। एक जर्मन खगोलज्ञ विलियम ओलबर्स (वेस्टा के खोजकर्ता) ने यह सुझाव दिया कि ये ग्रहिकाएं किसी बड़े ग्रह के टुकड़े हैं जो किसी कारण टूट गया। इसके और भी टुकड़े मिलने चाहिए। फोटोग्राफिक साधनों से खगोल को देखने में सचमुच बहुत सी ग्रहिकाएं मिलीं। अब तक कई हजार मिल चुकी हैं और ये मंगल और बृहस्पति के बीच की पट्टी में पायी जाती हैं। इनको (जैसा ऊपर बताया गया है) ग्रहिका कहते हैं। इनके बारे में विचार है कि ये किसी ग्रह के टूटने से नहीं बनीं बल्कि वह ग्रह जो पूर्ण रूप से ग्रह नहीं बन पाया, ग्रहिका बन गया। ये ज्यादातर अनियमित आकार की होती हैं, तथा केवल बहुत बड़ी ग्रहिकाऐं ही अपने गुरुत्व से गोल आकार लेती हैं। सबसे पहले मिलीं चार ग्रहिकाऐं अब तक मिलीं ग्रहिकाओं में सबसे बड़ी हैं।

चित्र 24 में हमने ग्रहिका पट्टी दिखाई है और कुछ ग्रहिकाओं की कक्षाऐं भी। ये कक्षाऐं अनियमित हैं इसलिए कभी पट्टी के बाहर भी हो
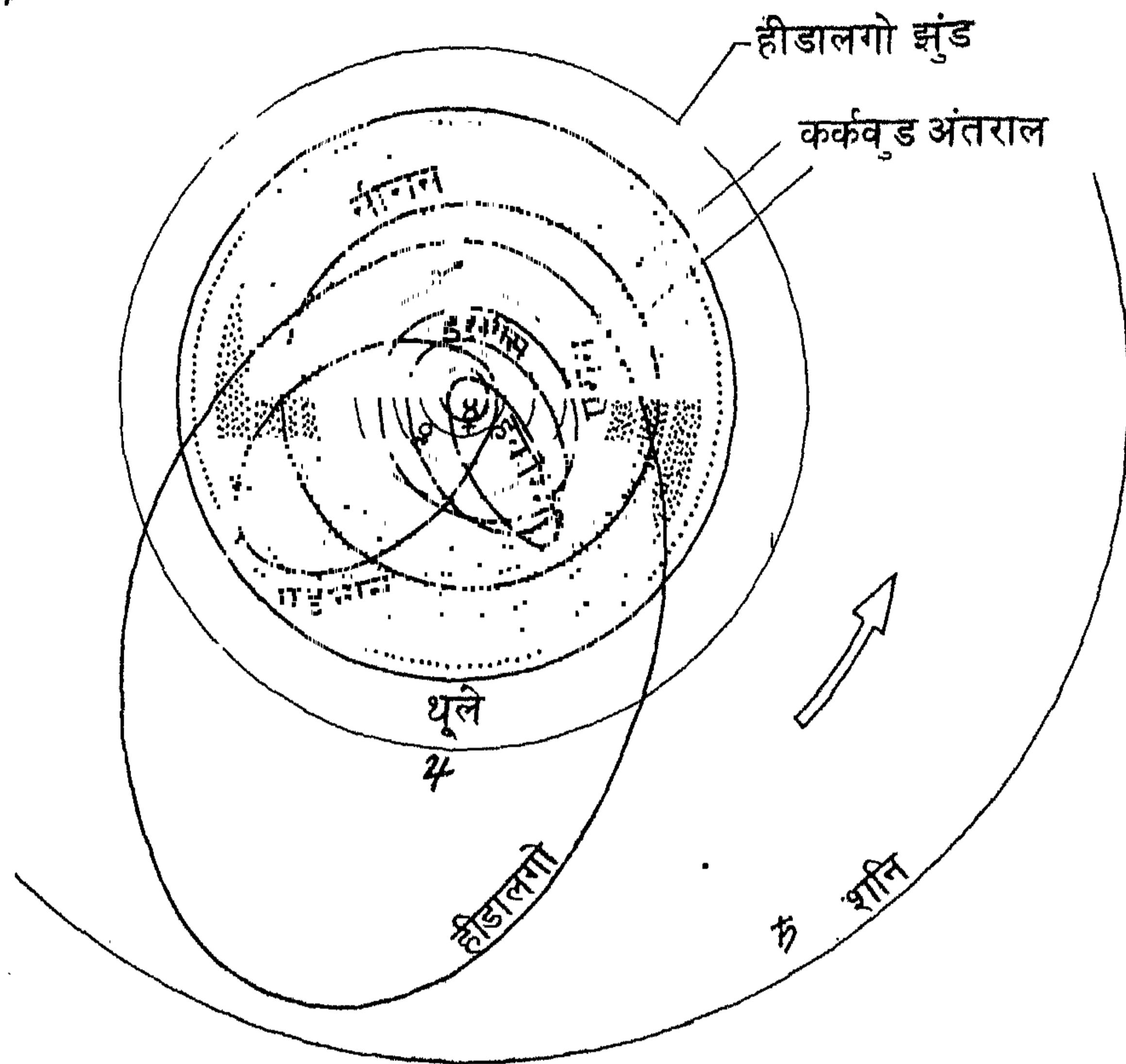
चित्र 24. **ग्रहिका पट्टी और कुछ ग्रहिकाओं की कक्षाएँ।**

जाती हैं। ग्रहिका पट्टी में भी कुछ अंतराल है जहां ग्रहिका बहुत कम मिलती हैं। इसे खगोलज्ञ कर्कवुड ने बड़े दिलचस्प तरीके से समझाया है। यदि किसी ग्रहिका का घूर्णन काल, सबसे बड़े ग्रह बृहस्पति के घूर्णन काल के एक साधारण अनुपात में हो, तो यह ग्रहिका बृहस्पति के करीब अपनी

कक्षा में एक ही स्थान पर बार-बार आयेगी। न्यूटन के गुरुत्व के नियम का प्रयोग करते हुए कर्कवुड ने दिखाया कि ऐसा होने पर बृहस्पति उस ग्रहिका की कक्षा को क्षोभित कर, सूर्य से उसकी दूरी में काफी अन्तर पैदा कर देगा। इस पट्टी के दो मुख्य अन्तराल सूर्य से इतनी दूरी पर हैं कि बृहस्पति के घूर्णन काल के मुकाबले उनका घूर्णन 1/2 और 1/3 है। सूर्यमंडल में इस परिघटना का एक और उदाहरण है। शनि के चारों ओर जो वलय (रिंग) है वह हजारों छोटे पत्थरों (या बर्फ के टुकड़ों) से भरा है। ये शनि का घूर्णन करते हैं। इस वलय में भी एक मुख्य अंतराल है जिसे कैसिनी भाग (cassini's division) कहते हैं (चित्र 24)। इस अंतराल के पत्थरों का घूर्णन काल शनि के उपग्रह मीमास (mimas) के घूर्णन काल का 1/2 है। दो और ग्रहिका झुंड हैं जिनकी कक्षा बृहस्पति जैसी है। एक झुंड बृहस्पति से 60° आगे और दूसरा 60° पीछे रहता है। क्षोभ से ये कभी-कभी अपनी कक्षा से अलग हो जाते हैं लेकिन 60° के स्थान से बहुत अधिक नहीं भटकते। इन ग्रहिकाओं को "ट्रोजन ग्रहिका झुंड" कहते हैं। उनका बृहस्पति और सूर्य के साथ विशेष स्थान न्यूटन के गुरुत्व नियम पर आधारित फ्रांस के गणितज्ञ लाग्राज (1736-1813) के अभिकलन की अनुपुष्टि दर्शाता है। लाग्राज इस नतीजे पर पहुंचे, कि जब भी दो विशाल द्रव्यमान के पिंड होंगे (जैसे सूर्य और बृहस्पति) और वे एक दूसरे के चारों ओर वृत्त में घूमेंगे तब पांच ऐसे स्थान होंगे जहां किसी भी छोटे द्रव्यमान वाली वस्तु की कक्षा ख़ासकर स्थायी होगी। दूसरे शब्दों में इन वस्तुओं को इनके स्थान से आसानी से नहीं हटाया जा सकता है। यदि ये किसी क्षोभ से भटक भी जायें तो फिर वापस उसी स्थान पर आ जायेंगी।

इन पांच स्थानों को लाग्राज के पांच बिन्दु कहते हैं, ये हैं : एल$_1$, एल$_2$,
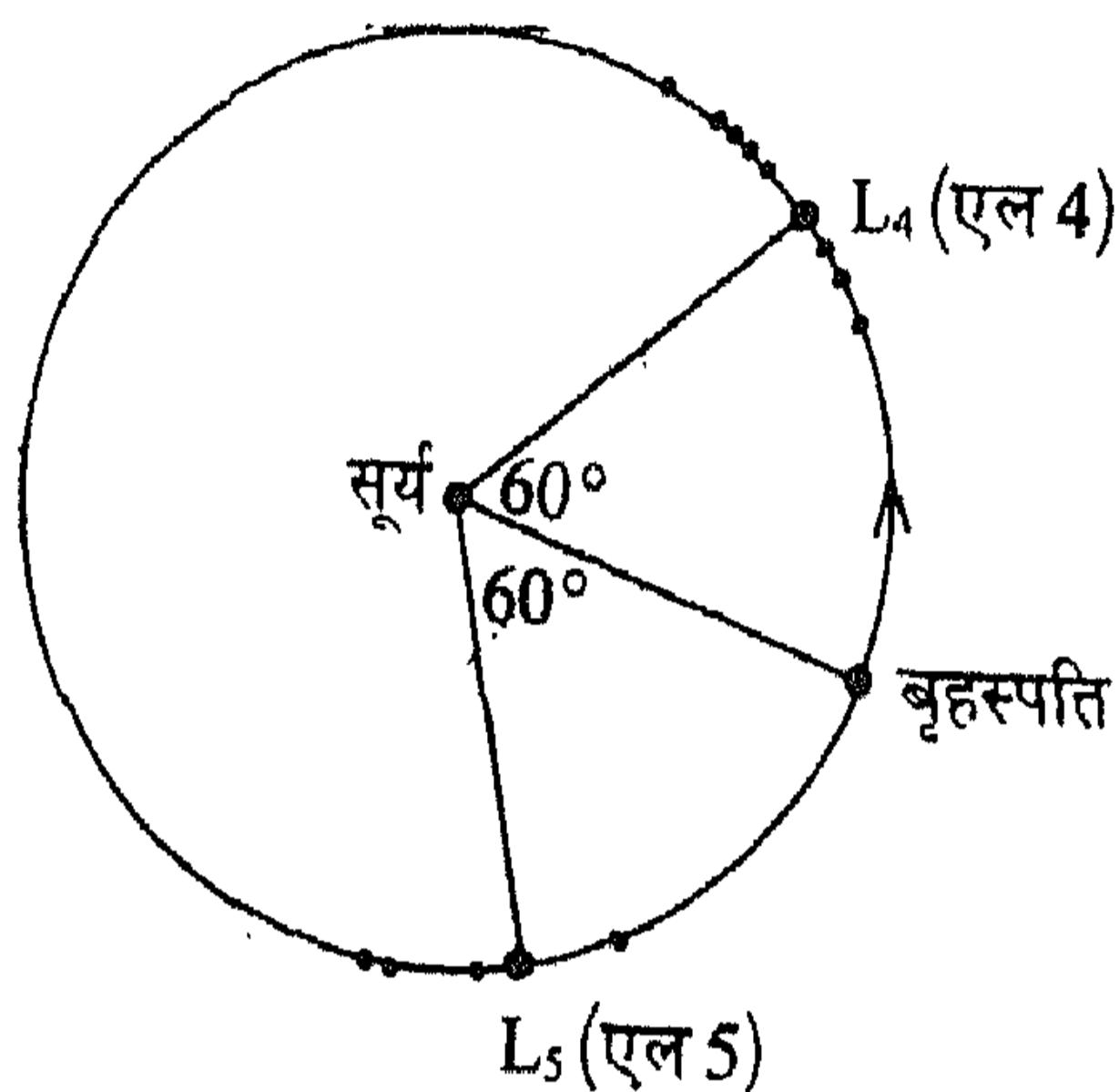
चित्र 25. **ट्रोजन ग्रहिका झुंड**

एल$_3$, एल$_4$, एल$_5$। पहले तीन बिन्दु उसी रेखा पर हैं जो दो विशाल द्रव्यमान पिंड से गुजरती है। ये ज्यादा स्थायी नहीं हैं। एल$_4$ और एल$_5$ बिन्दु ज्यादा स्थायी हैं। ये दोनों 60° के बिन्दु हैं जो चित्र 25 में दिखाये गये हैं।

6

कुछ नई खोजें

इस शताब्दी में सूर्य मंडल के विषय में हमारे ज्ञान में अपार विस्तार हुआ है लेकिन इस छोटी सी पुस्तक में इसका केवल सारांश ही दिया है। हमारे ज्ञान में जो भी प्रगति हुई है वह फोटोग्राफिक तकनीक के अधिशोधन के कारण हुई है। इस तकनीक द्वारा प्रकाशीय दूरबीन से डेटा मिलने में विस्तार हुआ है। इसके अलावा और भी नयी तकनीक विकसित हुई हैं जिनके द्वारा हम खगोल का निरीक्षण कर सकते हैं। ये हैं : रेडियो खगोलिकी, एक्स-रे खगोलिकी, अवरक्त खगोलिकी और रेडार।

अंतरिक्ष अन्वेषण के लिए, पिछले बीस साल में हुए विकास में सबसे अनोखी बात अंतरिक्ष अन्वेषियों का प्रयोग है। मनुष्य ने चन्द्रमा पर कदम रखा और वहां के पत्थर पृथ्वी पर लाया। यहां के वैज्ञानिकों ने उनकी पूरी जांच की और इससे कुछ जरूरी बातों का पता चला—जैसे चन्द्रमा की क्या आयु है? और यह कैसे बना? अब तक बिना आदमी के कई उपग्रह ग्रहों पर

भेजे गये हैं। इन उपग्रहों ने बहुत महत्वपूर्ण चित्र भेजे और वैज्ञानिक डेटा उपलब्ध कराया। पृथ्वी से छोड़ा गया मेरीनर उपग्रह मंगल ग्रह पर उतरा और वहां से उसने ऐसे चित्र भेजे जिससे वहां के पत्थर, रेगिस्तान और सूखी नदी के तल साफ दिखाई देते हैं। रूस की वेनेरा परियोजना ने बहुत अच्छे यंत्र शुक्र ग्रह पर उतारे। इससे शुक्र के घने वायुमंडल की जांच हुई। शुक्र की सतह पथरीली और उसका तापमान 480^0 सेल्सियस तक पाया गया। रेडार तकनीक के प्रयोग से शुक्र की सतह का नक्शा प्राप्त हुआ। घने वायुमंडल के कारण ये चित्र पहले नहीं मिलते थे। सबसे आश्चर्य की बात यह मालुम हुई कि शुक्र अपने अक्ष पर उलटी (दक्षिणावत:—clockwise) दिशा में, घूमता है। अमेरिका की वायजर परियोजना से हमें बृहस्पति के वायुमंडल के विषय में काफी ज्ञान प्राप्त हुआ है। निकट से ली गई फोटो से पता चलता है कि वायुमंडल बादामी, लाल और सफेद रंग के गैस से भरा है, जिसकी गति भंवरदार (swirling) और प्रक्षुब्ध (turbulent) है।

बृहस्पति के चार बड़े उपग्रह : यो, योरोपा, गैनीमीड एवं केलिस्टो हैं। इन्हें गैलीलियो ने खोजा था और इनको अब गैलीलियन उपग्रह कहते हैं। इन उपग्रहों का आकार बुध के बराबर है। इनमें आपस में काफी अन्तर है। "यो" की सतह चमकीली लाल, नारंगी और पीले रंग के गंधक और ज्वालामुखी से भरी है। ये ज्वालामुखी बृहस्पति के गुरुत्व बल से उत्पन्न होने वाले प्रतिबल के कारण हैं और ये सदा फटते रहते हैं।

"योरोपा" की सतह चिकनी और चमकीली है तथा इसमें काले धब्बे और आड़ी-तिरछी (criss-crossed) रेखाऐं हैं। ये शायद सतह के बर्फ में दरार पड़ने से हुई हैं।

"गैनीमीड" की सतह चन्द्रमा की सतह की तरह ही क्रेटरों से भरी है।

लेकिन चन्द्रमा में धब्बे हैं जो बड़े-बड़े मैदान हैं। ये मैदान ज्वालामुखी के लावा के बहने और क्रेटरों के भरने से, लाखों वर्ष पहले बने। पर गैनीमीड पर ऐसा नहीं हुआ, बल्कि इस पर जहां कम क्रेटर हैं वहां हम एक हल्के रंग की सतह पाते हैं। इन स्थानों पर विचित्र खांचे हैं जो मोटे बर्फ की सतह के फटने से बने हैं।

"केलिस्टो" क्रेटरों से भरा है। वायजर-2 (voyager-2) ने मार्च 1972 में बृहस्पति और उसके उपग्रहों के 15000 चित्र पृथ्वी पर भेजे। वायजर-2 आगे बढ़ता गया और अगस्त 1981 में शनि के पास से गुजरा। इसने पृथ्वी पर कई सुन्दर चित्र भेजे जिससे रिंग की जटिल बनावट में नये पहलू दिखाई दिये। फिर ये यूरेनस की ओर बढ़ा और 1986 में वहां पहुंचा। यह आगे बढ़ते हुए 1989 में नेपच्यून के पास से गुजरा। यह पूरी परियोजना तकनीकी की महान् सफलता का उदाहरण है।

कुछ वर्ष पहले यूरनेस और नेपच्यून में भी रिंग पाये गये। इस खोज में भारतीय वैज्ञानिकों का काम महत्वपूर्ण है, खासकर डा. जे.सी. भट्टाचार्या और उनके साथियों का।

□ □

भाग–दो

तारे

7

तारों की दूरी

पृथ्वी के सूर्य के चारों ओर घूमने के कारण, नजदीक के तारे दूर के तारों के मुकाबले में अपना स्थान बदलते हुए दिखाई देते हैं। यह प्रभाव लंबन (parallax) के नाम से प्रसिद्ध है। इसको समझना बहुत कठिन है क्योंकि सभी तारे (सूर्य-पृथ्वी की दूरी के मुकाबले में) बहुत ज्यादा दूरी पर हैं। इसलिए तारों का लंबन मापने के लिए हमें उन कोणों में परिवर्तन मापना होगा जो नजदीक के तारे, दूर के तारों के साथ बनाते हैं। हम छोटे कोण का माप ''मिनट'' और ''सेकन्ड'' में अंकित करतें हैं। 1 डिग्री का साठवां भाग (1/60), आर्क के 1 मिनट (1′) के बराबर होता है। यदि किसी तारे का लंबन अथवा एक साल में उसका स्थान कितने सेकन्ड से बदला, ज्ञात हो जाए तो उसकी पृथ्वी से दूरी आसानी से निकाली जा सकती है। यदि दूरी बहुत हो तो खगोलिक मात्रक (astronomical unit) (ए.यू.) प्रयोग होता है या फिर दूरी पारसेक (parsec) में बतायी जाती है। पृथ्वी से सूर्य की औसत

दूरी (जो 149,600,000 किलोमीटर है) को एक खगोलिक मात्रक कहते हैं और एक पारसेक वह दूरी है जिसमें एक खगोलिक मात्रक किसी दूर की
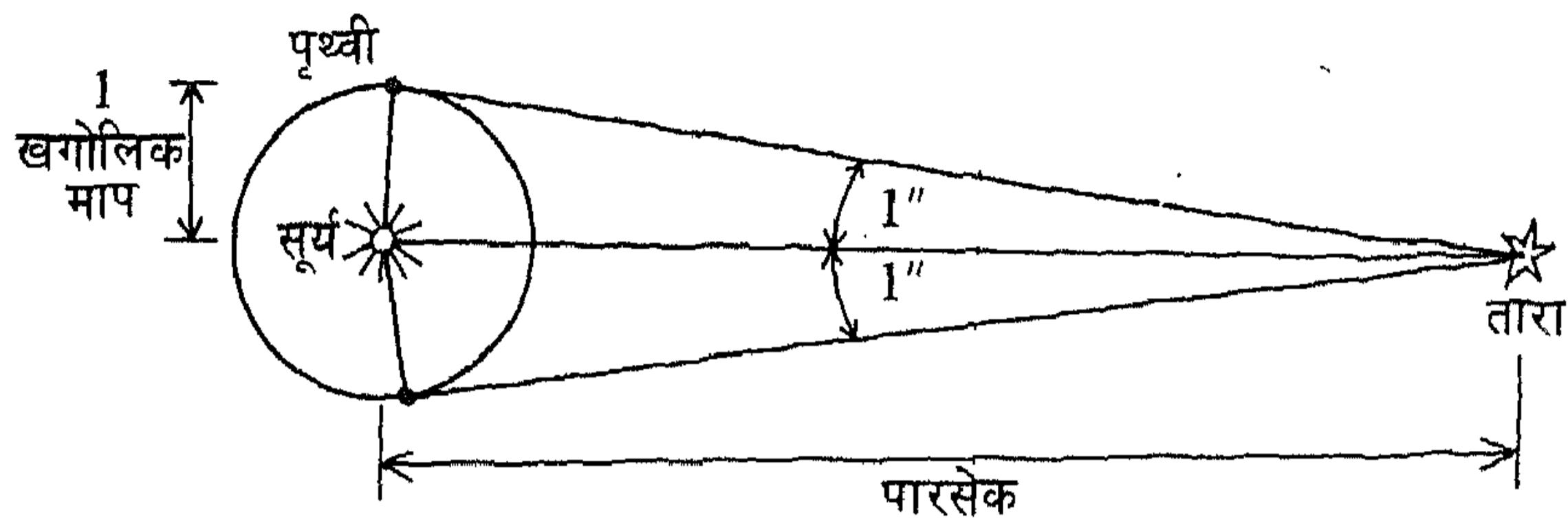
चित्र 26. पारसेक

वस्तु के साथ 1″ का कोण बनाते हैं। इसलिए एक तारा जो 1 पारसेक की दूरी पर है वह अपना आभासी स्थान एक वर्ष में 2″ से बदलेगा (चित्र 26)। एक पारसेक 266000 ए. यू. के बराबर है।

दूरी नापने के लिए एक और मात्रक है। इसमें वह दूरी ली जाती है जो प्रकाश की किरणें एक साल में तय करती हैं। इस दूरी को एक प्रकाश वर्ष कहते हैं। प्रकाश की गति एक सेकन्ड में 300,000 किलोमीटर है। एक प्रकाश वर्ष 9.46×10^{12} किलोमीटर या 63,240 ए.यू. या 0.3068 पारसेक होता है।

पृथ्वी के सबसे पास का तारा अल्फा-सेन्टॉउरी (alfa centaury) है। इसकी दूरी 1.3 पारसेक (करीब 4 प्रकाश वर्ष) है। सबसे पास के तारे से प्रकाश को पृथ्वी तक पहुंचने में 4 वर्ष लगते हैं। जबकि सूर्य से 8½ मिनट।

लंबन के उपयोग से केवल करीब के तारों की दूरी नापी जा सकती है। जो तारे 100 पारसेक से भी ज्यादा दूरी पर हैं उनकी दूरी लंबन से जानना कठिन है। इसलिए हमें कई नयी विधियों के बारे में जानना होगा।

स्पेक्ट्रोस्कोपी विज्ञान (अध्याय 9) में हम तारों से आये प्रकाश की जांच करते हैं। इससे हमें तारों का तापमान और उसके बाहरी हिस्सों का ज्ञान होता है। दो तारे जो एक ही तरह के हैं करीब-करीब बराबर रोशनी विकिरण करेंगे एवं उनकी ज्योति बराबर होगी। इसलिए यदि हम एक ही जैसे दो तारे देखें, जिसमें एक तारा इतना नजदीक हो कि लंबन तकनीक से उसकी दूरी पता चल जाये और दूसरा मंद दीप्ति का हो, तब हम मान सकते हैं कि दोनों बराबर ज्योति के हैं। दूसरा तारा मंद इसलिए दिखता है क्योंकि उसकी दूरी अधिक है। उनकी आभासी ज्योति की तुलना कर हम दूसरे तारे की दूरी का पता लगा सकते हैं। किसी तारे की दूरी का पता चलने पर हम उसकी ज्योति (यानि कितनी रोशनी उससे विकिरण होती है) का अनुमान लगा सकते हैं। सिरियस (sirius), सूर्य से 22 गुना ज्यादा ज्योति देता है, लेकिन कैनोपस (canopus) की तुलना में सिरियस की ज्योति 1/75000 ही है। इस प्रकार तारों में आपस में बहुत अंतर हो सकता है। सबसे दीप्तिमान तारा, सबसे मंद तारे की तुलना में 10^9 गुना प्रकाश फेंकता है।

□□

8

तारों के रंग

हम अपनी आंखों से भी देख सकते हैं कि तारों से आया प्रकाश केवल सफेद नहीं होता है। बेटेलगियूस, ओरियों तारामंडल का सबसे चमकीला तारा है और यह स्पष्ट रूप से लाल दिखाई देता है। छोटी दूरबीन से देखने पर भी तारों का रंग स्पष्ट हो जाता है। रंग द्वारा तारों की सतह के तापमान का पता चलता है। जब कभी हम किसी धातु के टुकड़े को गरम करते हैं तब उसके तापमान और रंग का संबंध देखते हैं। जब यह गर्म हो जाता है तो लाल दिखने लगता है। इससे भी अधिक गर्म होने पर नारंगी के रंग का हो जाता है और तापमान बढ़ाने पर यह पीला, और आगे सफेद हो जाता है। बहुत ही अधिक तापमान होने पर सफेद रंग, नीले रंग में बदल जाता है। ऐसे ही रंगों का परिसर (range) हम लोग तारों में भी देखते हैं। सावधानी से यदि हम तारों का रंग मापें तो उनकी सतह का तापमान ठीक मालुम हो जायेगा।

हर्ट्जस्प्रुंग (Hertz sprung) और रसेल (Russel) ने तापमान और

तारों के रंगों (ज्योति) में संबंध स्थापित किये। 1913 में रसेल ने एक आरेख प्रकाशित किया जिसमें उसने हज़ारों तारों का स्थान दिखाया (चित्र 27)। इस आरेख को एच-आर (HR) आरेख कहते हैं।
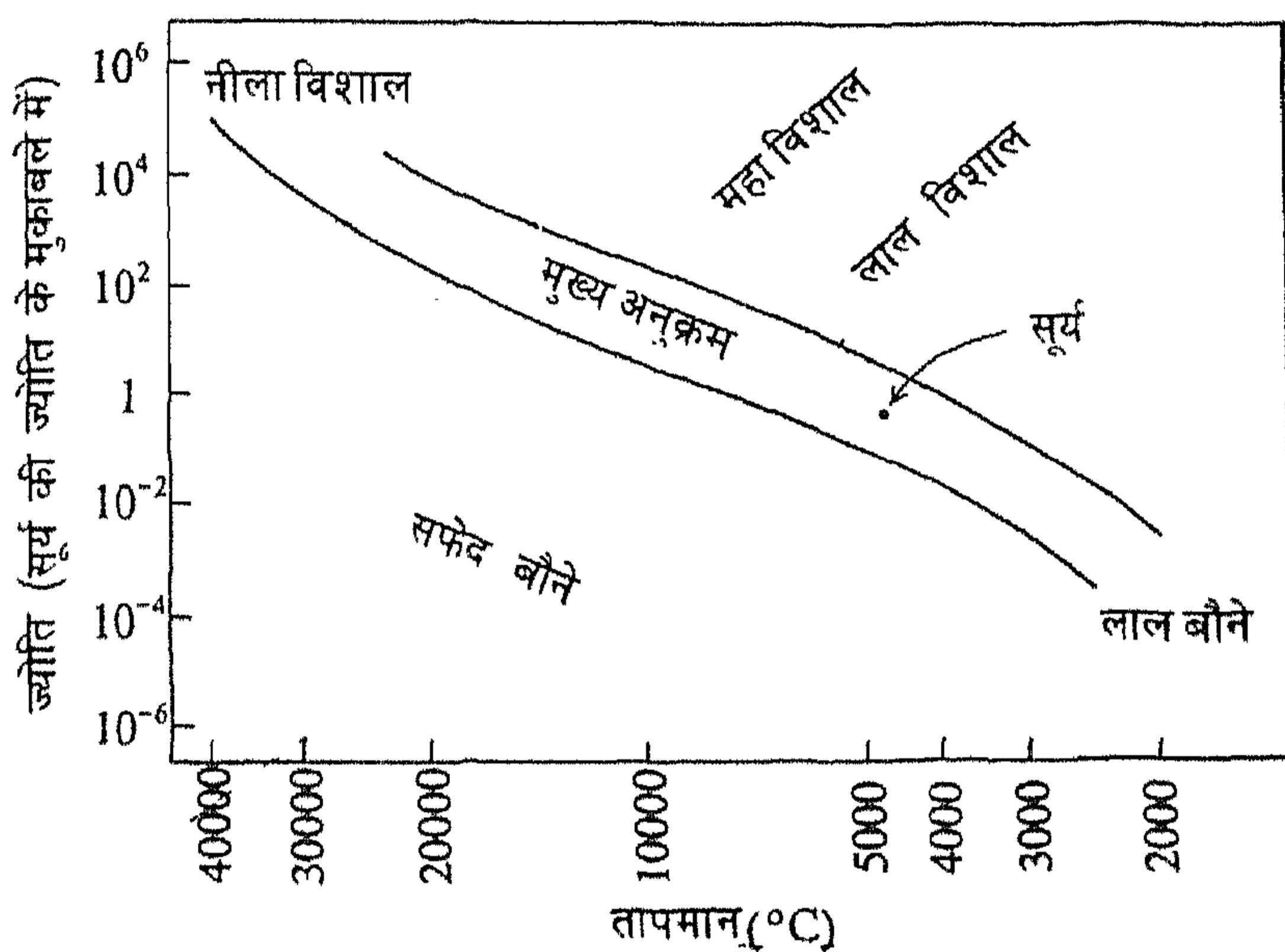
चित्र 27. **हर्ट्ज़स्प्रुंग रसेल आरेख**

सबसे विस्मयकारी बात इस एच-आर आरेख में यह है कि अधिकांश तारे ऐसे हैं कि वे विकर्ण पट्टी में पड़ते हैं। इस पट्टी को मुख्य अनुक्रम (main sequence) कहते हैं। ऊपर कोने पर बहुत ही गर्म नीले विशाल

और नीचे कोने पर धीमे लाल रंग के बौने तारे हैं। हमारा अपना सूर्य एक औसत तारा है और उसका स्थान मुख्य अनुक्रम के बीच में है। कुछ तारे अनोखे हैं। लाल विशाल (red giants) उतने गर्म नहीं हैं लेकिन काफी प्रकाश फेंकते हैं। इससे यह पता चलता है कि वे बहुत विशाल हैं। सबसे बड़ा तारा (अब तक के ज्ञान के आधार पर) अति विशाल ऐपसीलों ऑरीगे (apsilon aurigae) है। इसका व्यास सूर्य से 2000 गुना अधिक है—शनि की कक्षा के व्यास से भी बड़ा। लाल विशाल तारों का घनत्व काफी कम होता है। बेटेलगियूसस या ऐपसीलों ऑरीगे की गैस इतनी कम घनी है कि वह पृथ्वी पर लगे अनुसंधानशाला में उपलब्ध निर्वात से भी कम है। कुछ और अजीब तारे मुख्य अनुक्रम के बाहर हैं। ये हैं श्वेत बौने (white dwarf)। श्वेत बौने बहुत ही छोटे हैं लेकिन उनका घनत्व अपार है। उदाहरण के लिए सिरियस-बी (sirius B) जो आकाश में सबसे चमकीले तारे सिरियस-ए (sirius A) के चारों ओर घूमता है, यूरेनस के बराबर है और इतना घना है कि उसके एक घन सेन्टीमीटर का भार 36 किलोग्राम है।

□□

9

स्पेक्ट्रोस्कोपी

गति और गुरुत्व के नियमों के खोजकर्ता न्यूटन की खोज के अनुसार सफेद प्रकाश कई रंगों के प्रकाश से बना है। प्रिज़्म इस सफेद प्रकाश की किरणों को उनके रंग के घटकों में विभाजित कर देता है। (चित्र 28 देखिए) रंगों के परास को स्पेक्ट्रम (spectrum) कहते हैं और इसे हम इन्द्रधनुष (जो प्रिज़्म की तरह सूर्य किरण का पानी की बूंदों द्वारा विघटन होने से बनता है) में देखते हैं।

प्रकाश तरंग में चलता है और स्पेक्ट्रम के हर एक रंग की तरंग-दैर्ध्य अलग-अलग होती है। लंबी तरंग लाल रंग वाले सिरे की तरफ और छोटी तरंग बैंगनी रंग वाले सिरे की तरफ होती है। तापमान से संबंधित रंगों के परास को हम इस प्रकार समझ सकते हैं। एक गर्म वस्तु जैसे धातु का टुकड़ा या एक तारे की सतह, सभी तरंग दैर्ध्य के प्रकाश को विकिरण करती है। 5000^0 से 6000^0 सें. तापमान होने पर यह गर्म वस्तु पीले-सफेद रंग की
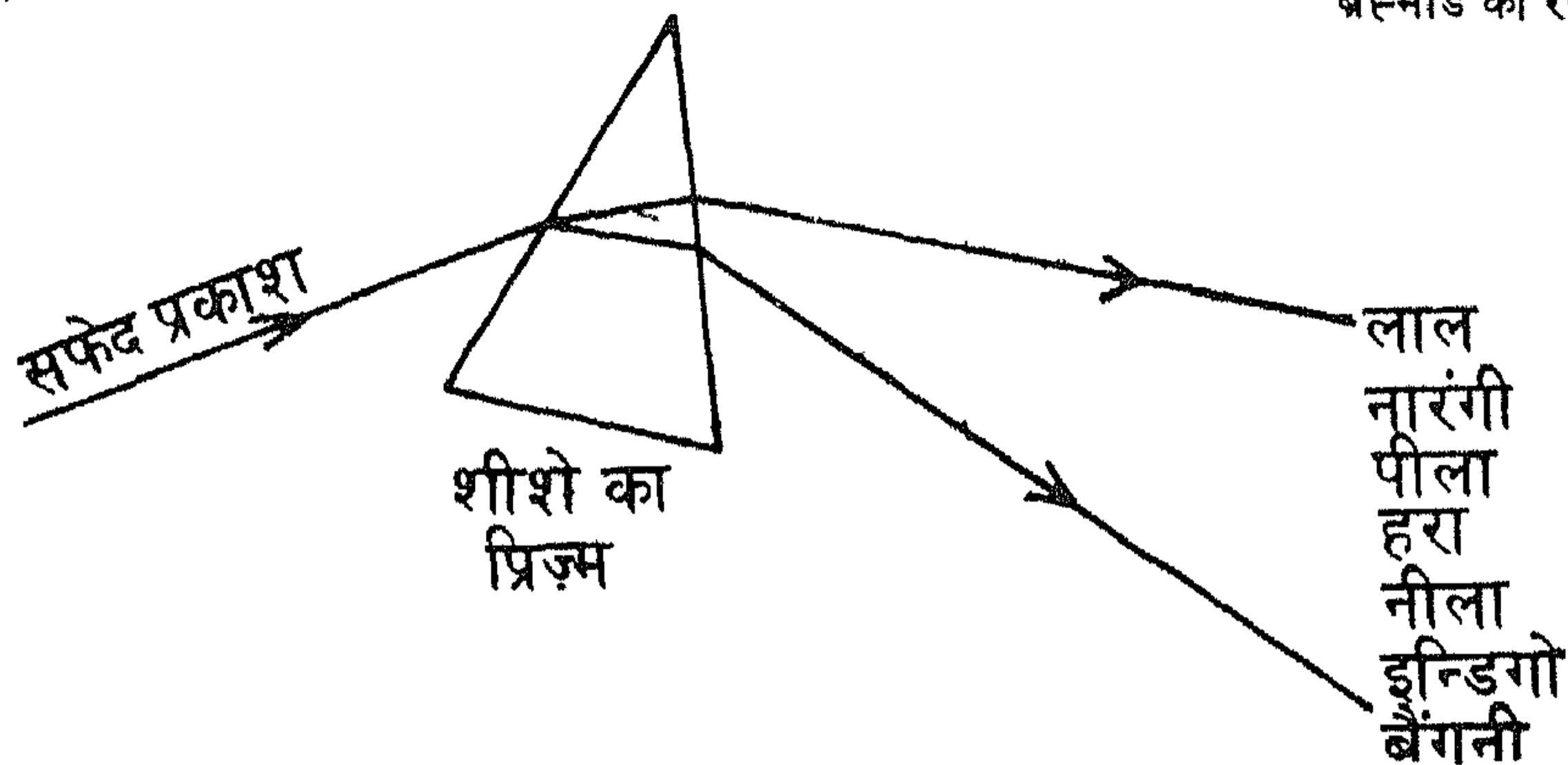
चित्र 28. **सफेद प्रकाश को प्रिज्म से भेजने पर स्पेक्ट्रम का बनना**

दिखाई देती है। इसका अर्थ है कि यह वस्तु सफेद पीले रंग का प्रकाश विकिरण कर रही है (सूर्य की सतह पर यही तापमान है)। इससे कम तापमान पर लम्बे तरंग दैर्ध्य का प्रकाश होता है इसलिए यह वस्तु लाल दिखाई देती है और अधिक तापमान पर छोटे तरंग दैर्ध्य का प्रकाश होता है इसलिए नीली दिखाई देती है।

जब तारों का प्रकाश प्रिज़्म से विभक्त हो कर रगीन स्पेक्ट्रम में बदल जाता है तो उसमें कुछ काली लकीरें भी दिखाई देती हैं। ये काली लकीरें सबसे पहले फ्रोनहॉफर द्वारा 1815 में सूर्य किरणों के स्पेक्ट्रम में देखी गयी थीं। ये सूर्य की बाहरी सतह में उपस्थित छोटे अणुओं और परमाणुओं के कारण बनती हैं। ये अणु और परमाणु कुछ निर्धारित आवृत्ति (frequency) की किरणों का अवशोषण (absorption) करते हैं। जिसके कारण इन तरंग दैर्ध्यों के संगत रंग काफी कम हो जाते हैं। इन रेखाओं को अवशोषण रेखाएं (absorption lines) कहते हैं।

अलग-अलग अवशोषण रेखाओं के सेट के लिए तारों के अपने

स्पेक्ट्रम होते हैं। खगोलज्ञ इन अवशोषण स्पेक्ट्रमों को वर्णमाला के अक्षरों द्वारा पुकारते हैं। ये किस प्रकार के हैं, यह उनके तापमान पर निर्भर करता है। यह नीचे सारणी में दिखाया गया है।

सारणी 1

अवशोषण स्पेक्ट्रम

तापमान (से.)	**प्रकार**	**रंग**
25,000-50,000	ओ (O)	नीला
11,000-25,000	बी (B)	नीला
7,500-11,000	ए (A)	नीला-सफेद
6,000- 7,000	एफ (F)	सफेद
5,000- 6,000	जी (G)	पीला-सफेद
3,500- 5,000	के (K)	लाल नारंगी
2,000- 3,500	एम (M)	लाल

मुख्य अनुक्रम में अधिकतर तारे 'बी' से 'एम' प्रकार के हैं। सूर्य 'जी' प्रकार का तारा है। तीन अन्य प्रकार के तारे भी हैं जो ठंडे हैं और 'एम' प्रकार से भी कम ज्योति के हैं। इनको 'आर और एस' प्रारूप दिया गया है। अधिक ज्योति और तापमान वाले 'ओ' प्रकार के तारे भी बहुत कम हैं। इन तारों के स्पेक्ट्रम में उत्सर्जन (emission) व अवशोषण से प्राप्त दोनों प्रकार की रेखाएें हैं। इससे प्रतीत होता है कि ये तारे बहुत ही गर्म दीप्तिमान गैस के बादलों से ढके हैं। इन्हें वुल्फरायेत (wolf-rayet) तारे कहते हैं।

तारों की स्पेक्ट्रम रेखाओं से उनके तापमान और तत्व के ज्ञान के अतिरिक्त उनसे यह संकेत भी मिलता है कि ये तारे कितनी गति से हमसे दूर जा रहे हैं या हमारे निकट आ रहे हैं। यह डाप्लर प्रभाव (doppler effect) के कारण होता है। आपने देखा होगा कि यदि आप एक रेलवे प्लेटफार्म पर खड़े हों और एक गाड़ी सीटी बजाते हुए चली जाये तो सीटी की आवाज लगातार बदलती हुई सुनाई देती है। जब गाड़ी हमारी ओर आ रही होती है तो सीटी का तारत्व (pitch) ऊंचा और जब हमसे दूर जा रही होती है तो तारत्व नीचा होता है। वास्तव में ध्वनि, वायु में तरंग उत्पन्न होने से होती है जो सीटी बजाने से हवा में उसी तरह से फैलती है जैसे एक जलाशय में पत्थर फेंकने पर समय के साथ चारों ओर फैलती हुई तरंगें पैदा होती हैं। चूंकि सीटी गति में है इसलिए ध्वनि की तरंगें उसके सामने गुच्छित हो जाती हैं और उसके पीछे की ओर फैल जाती हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि तारत्व में परिवर्तन होता है। प्रकाश के साथ भी यही होता है क्योंकि यह भी एक तरंग-गति है। प्रकाश की तरंग विद्युत-चुम्बकीय है और इसे हवा या किसी अन्य पदार्थ के माध्यम की आवश्यकता नहीं है। इसलिए उन तारों का, जो हमारी ओर बढ़ रहे हैं प्रकाश नीला (छोटी तरंग लम्बाई का) दिखाई देगा और तारे जो हमसे दूर जा रहे हैं उनका प्रकाश लाल दिखाई देगा (तरंग लम्बाई बढ़ जायेगी)। इस प्रभाव को हम आसानी से इसलिए देख सकते हैं क्योंकि तारे के स्पेक्ट्रम की अवशोषण रेखाऐं लाल या नीले रंग की ओर स्थानान्तरित हो जायेंगी। इनका अपने मानक स्थान से कितना स्थानान्तरण हुआ, यह जानने से हम यह पता लगा सकते हैं कि तारा कितनी गति से हमसे दूर या हमारे निकट जा रहा है।

डाप्लर प्रभाव से हम यह भी पता लगा सकते हैं कि कोई तारा घूर्णन

कर रहा है या नहीं। यदि तारे का अक्ष हमारी तरफ नहीं है, तो घूर्णन से तारे की सतह का कुछ भाग हमारे तरफ आएगा और कुछ भाग हमसे दूर जायेगा। इसलिए लाल की तरफ स्थानान्तरित एवं नीले की तरफ स्थानान्तरित प्रकाश के मिश्रण से इस तारे का स्पेक्ट्रम बनेगा। इसका अर्थ है कि घूर्णन करने वाले तारों की अवशोषण रेखाऐं थोड़ी विस्तृत होंगी और इसलिए सुस्पष्ट भी नहीं होंगी।

10

विद्युत चुम्बकीय स्पेक्ट्रम

प्रकाश तरंग की लम्बाई ऐंगस्ट्राम (angstrom) मात्रक में मापी जाती है। एक ऐंगस्ट्राम मात्रक (प्रतीक Å) एक सेंटीमीटर का दस करोड़वां भाग (10^{-8}cm) होता है यानी कि 1 Å = 10^{-8} सेन्टीमीटर। प्रकाश की वे तरंग दैर्ध्यें जो हमारी आंखें देख सकती हैं, वे 4000 Å (स्पेक्ट्रम का बैंगनी सिरा) से 7000 Å (स्पेक्ट्रम का लाल सिरा) तक होती हैं। इन तरंग लम्बाईयों का परास पूरे विद्युत चुम्बकीय स्पेक्ट्रम का बहुत ही छोटा भाग है। रेडियो तरंग की लम्बाई कई किलोमीटर होती है। दूसरी ओर गामा किरणें है जिनकी तरंग लम्बाई बहुत ही छोटी होती है (10^{-10} सेन्टीमीटर से 10^{-13} सेन्टीमीटर)। विद्युत चुम्बकीय स्पेक्ट्रम का परास चित्र 29 में दिखाया गया है।

खगोली वस्तुओं से आने वाला कुछ विकिरण हम तक नहीं पहुंच पाता है क्योंकि पृथ्वी का वायुमंडल इन तरंगों के लिए पारदर्शी (transparent)

नहीं है। यह चित्र 29 में दाहिनी ओर पट्टी में काले रंग में दिखाया गया है। इसमें दो खिड़कियां (सफेद जगह) हैं। पृथ्वी का वायुमंडल सफेद रोशनी और रेडियो तरंगों (छोटी लम्बाई) के लिए पारदर्शी है। यही वे दो खिड़कियां हैं जो विद्युत चुम्बकीय स्पेक्ट्रम में दिखाई देती हैं। पारंपरिक खगोलिक शास्त्र, दृश्य प्रकाश पर निर्भर था। इसी के द्वारा हम लोग खगोल की वस्तुओं को देखते हैं। इस शताब्दी में हमने दूसरी खिड़की का प्रयोग करके रेडियो खगोलिकता का विकास किया जिससे ब्रह्मांड के विषय में हमारे ज्ञान की और अभिवृद्धि हुई। मनुष्य के भेजे हुए उपग्रहों द्वारा अब हम ऐसी तरंगों का निरीक्षण कर सकते हैं जो पहले पृथ्वी के वायुमंडल के कारण उपलब्ध नहीं थीं। अवरक्त (infrared) और एक्सरे (x-ray) एस्ट्रोनोमी में नये अनुसंधान तकनीक आ जाने से, इनका प्रयोग बहुत तेजी से बढ़ रहा है।

चित्र 29. **विद्युतचुंबकीय स्पेक्ट्रम**

□□

11
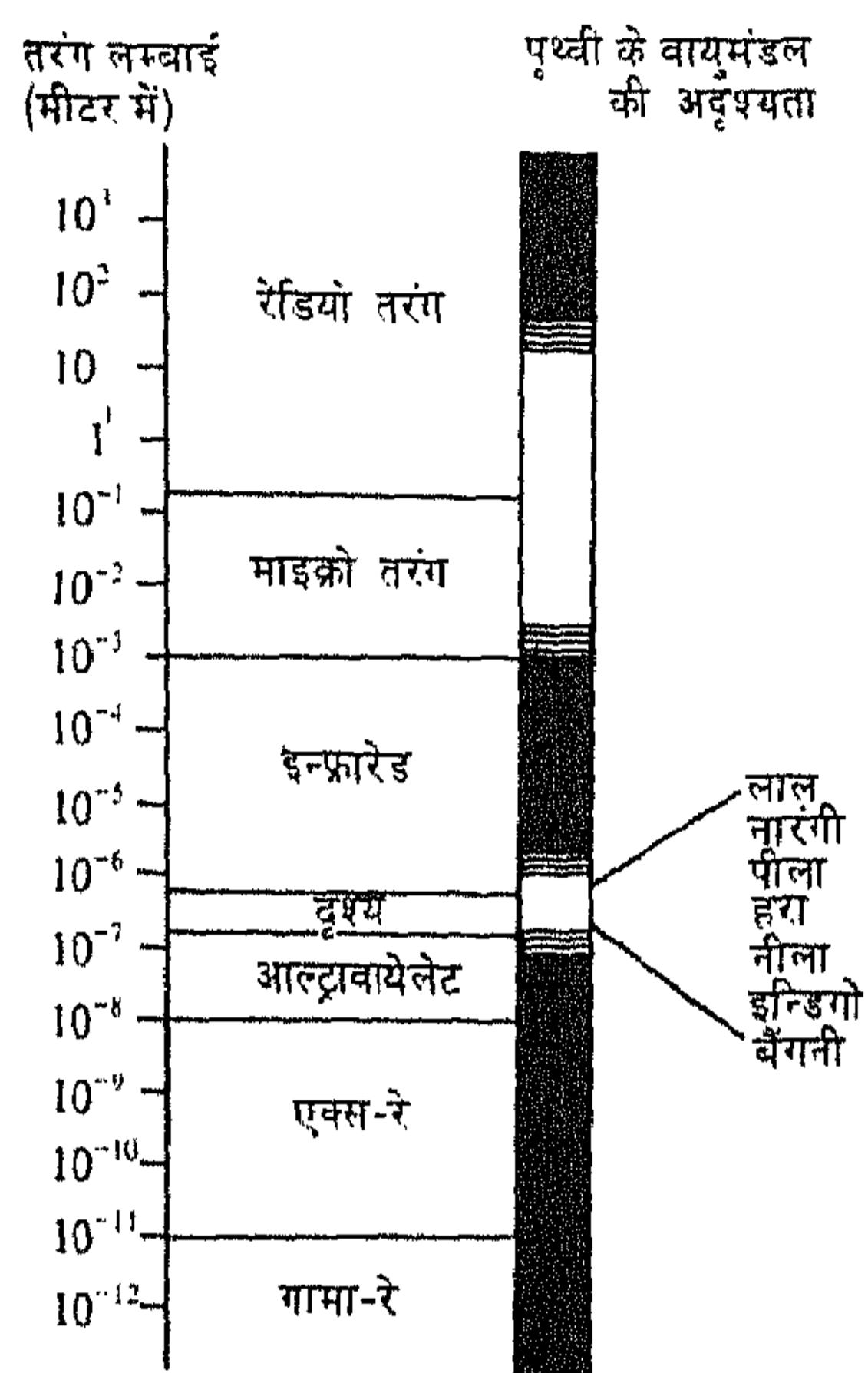
युग्मतारा

बहुत से तारे, जब दूरबीन से देखे जाते हैं तो वे अकेले नहीं परन्तु दो तारों के समूह के रूप में पाये जाते हैं जो एक दूसरे के चारों ओर घूमते दिखाई देते हैं। ऐसे ही दो तारों को युग्मतारा कहते हैं। ब्रह्मांड में ऐसे भी समूह हैं जिनमें तीन या अधिक तारे एक दूसरे के गुरुत्व आकर्षण में घूमते हैं। युग्मतारों द्वारा बहुत खास चीजों का पता चल सकता है इसलिए खगोलिक वैज्ञानिकों के लिए उनका विशेष स्थान है। उनकी गति और दूरी जानकर और न्यूटन के गुरुत्व नियम का प्रयोग करके हम उनके द्रव्यमान का परिकलन कर सकते हैं।

वह युग्मतारा जो दूरबीन की सहायता से दिखाई दे उसे प्रकाशीय युग्म (optical binary) कहते हैं। दूसरी युग्म प्रणालियां या तो हमसे बहुत दूर हैं या फिर उनमें दो तारे आपस में इतने करीब हैं कि वे बड़ी दूरबीन से भी एक प्रकाश बिन्दु जैसे ही दिखाई देते हैं। सौभाग्यवश कुछ दूसरे तरीके

भी हैं जिनसे यह पता चल जाता है कि जो हम देख रहे हैं वह युग्मतारा ही है या नहीं।

जब एक युग्मतारे का स्पेक्ट्रम ज़ांचा जाता है, तो यह पता चलता है कि दो स्पेक्ट्रम एक दूसरे के ऊपर अध्यारोपित (superimposed) हैं। यह इसलिए होता है क्योंकि दोनों तारे एक दूसरे के चारों ओर घूमते हैं और
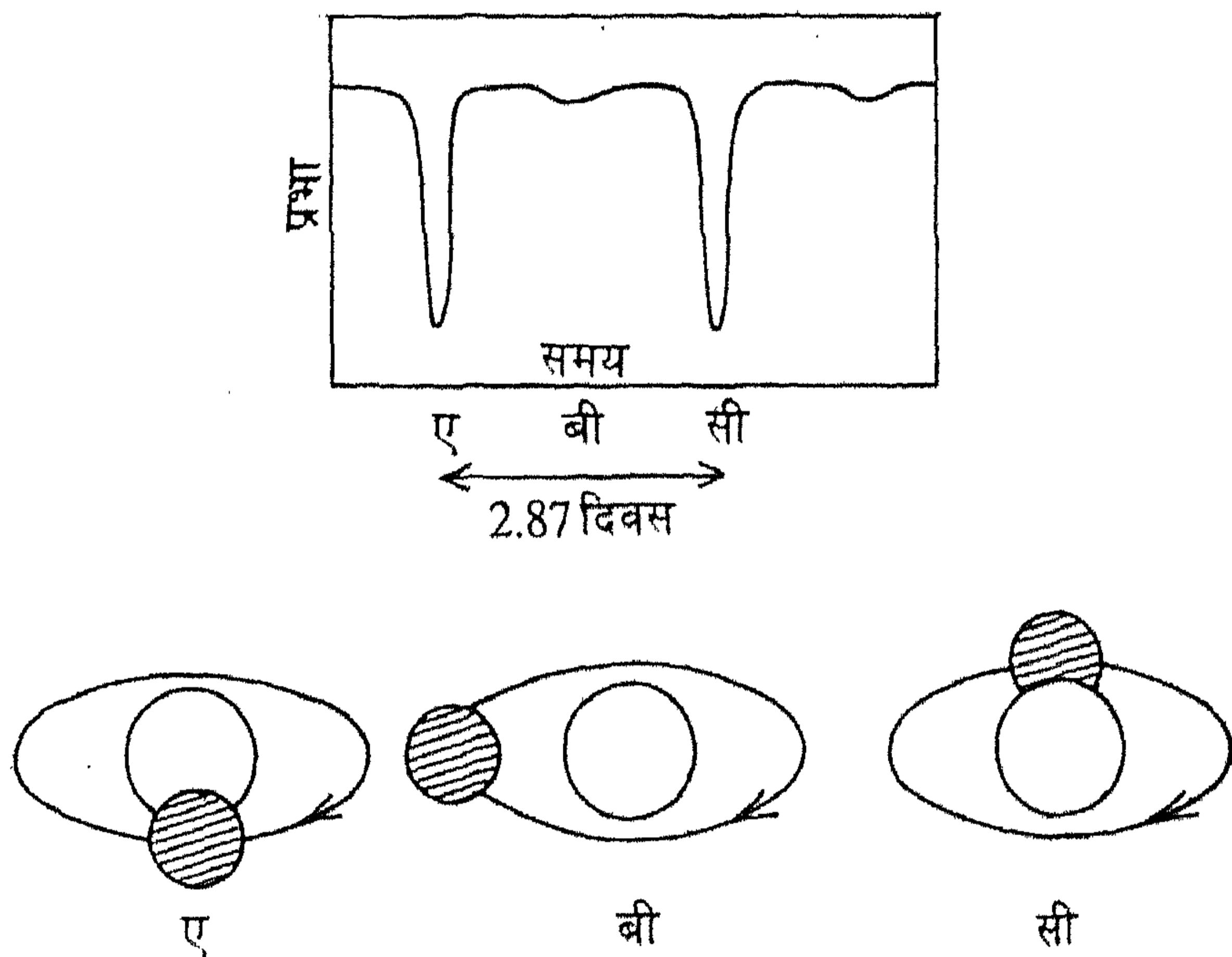
चित्र 30. **युग्मतारा ऑलगोल की प्रभा में विचरण**

इसके फलस्वरूप जब एक तारा हमसे दूर जाता है तब दूसरा पास आता दिखाई देता है। कुछ समय बाद इसका उलटा होता है। इसीलिए दो स्पेक्ट्रम बनते हैं—एक लाल की तरफ और दूसरा नीले की तरफ स्थानान्तरित होते हुए। जैसे-जैसे ये तारे घूमेंगे, स्पेक्ट्रम की रेखाऐं आगे पीछे होंगी। ऐसी युग्म प्रणाली को स्पेक्ट्रोस्कोपी युग्म (spectroscopic binary) कहते हैं।

खगोल में एक चमकीला तारा ऑलगोल (algol) (अरबी में ऑलगोल का अर्थ राक्षस है) एक इकलिप्सींग (eclipsing) युग्मतारा है। इसमें घूमते हुए तारे, घूमते-घूमते एक दूसरे के सामने भी आ जाते हैं (जब पृथ्वी से देखा जाये)। जब दोनों तारे पृथ्वी के सम्मुख होते हैं तो उनसे आया प्रकाश करीब-करीब स्थिर होता है, लेकिन जब एक तारा दूसरे के सामने आ जाता है और पहले तारे का प्रकाश पृथ्वी तक नहीं पहुंच पाता है तो उनका प्रकाश थोड़ी देर के लिए कम हो जाता है (चित्र 30)।

12

तारों का जन्म

एक तारे की जीवनी एक विशाल गैस और धूल के बादल से शुरू होती है। इस अवस्था में इसे निहारिका (nebula) कहते हैं। ओरीयो में एक बड़ी निहारिका, एक रोमांचक उदाहरण है। यह 100 प्रकाश-वर्ष विस्तृत है और इसमें बहुत से नये तारे हैं और बहुत से ऐसे तारे हैं जिनका निर्माण हो रहा है। एक दूसरा उदाहरण, उस दीप्तिमान क्षेत्र का है जिसमें प्लयोडिज (pleaides) के तारे अंत: स्थापित हैं। यह बहुत आसानी से, बिना दूरबीन के देखा जा सकता है।

निहारिका अधिकतर हाइड्रोजन गैस की बनी होती है यानी उसमें मौजूद गैसों में हाइड्रोजन गैस की मात्रा सबसे अधिक होती है। निहारिका के पदार्थ भंवरात्मक और प्रक्षुब्ध गति से ऐसे क्षेत्र बनाते हैं जहां घनत्व थोड़ा अधिक होता है। सघन क्षेत्र अगर बहुत बड़े और घने हों तो गुरुत्व आकर्षण के कारण संकुचित होंगे और इसके फलस्वरूप और अधिक घने होते

जायेंगे। इस तरह एक ऐसा क्षेत्र बन जाता है जहाँ पदार्थ संकुचित होते जाते हैं और आकर्षण से गोलाकार बनते जाते हैं। इसके साथ ही साथ तापमान और दाब भी बढ़ जाता है। जब तापमान और दाब इस क्षेत्र के बीच बहुत ऊंचा हो जाता है तब नाभिकीय (nuclear) अभिक्रिया आरम्भ हो जाती है। इसमें हाइड्रोजन नाभिक (hydrogen nucleus) एक दूसरे से टकराते हैं और हीलियम नाभिक बन जाते हैं। इस प्रक्रम में गर्मी और प्रकाश के रूप में ऊर्जा उत्पन्न होती है। इस अग्नि बॉल का निपात उस समय रुकता है जब केन्द्रीय क्षेत्र से निकलते प्रकाश और ताप का दाब, गैस के दाब के साथ, गुरुत्व आकर्षण शक्ति के बराबर हो जाता है। इस अवस्था में गैस का बॉल, ताप और प्रकाश से चमकता हुआ तारा बन जाता है।

आधुनिक खगोल भौतिक विज्ञान को सर ए.एस. ऐडिंगटन (1882-1944) ने शुरू किया। उन्होंने यह महसूस किया कि वह साधारण चित्र जिसमें एक तारा (जो गैस का बॉल है) अपने द्रव्यमान के बल के कारण निपातित नहीं होता और अपने गर्म अंतरंग के विकिरण दाब से रुका रहता है, यह गणित की सहायता से जांचा जा सकता है और किस प्रकार केन्द्र से सतह का तापमान, दाब और घनत्व बदलते हैं इसकी जानकारी हमें मिल सकती है। इसके परिकलन के लिए तारे की अंतरंग अवस्था के विषय में जानकारी होना आवश्यक है। उदाहरण के लिए, चूंकि तारा पारदर्शी नहीं है, इसलिए उसके केन्द्र से ताप या प्रकाश को सतह तक जाने में काफी समय लगेगा क्योंकि रास्ते में उनकी गैस के साथ पारस्परिक क्रिया होती है। किस गति से ताप और प्रकाश सतह पर पहुंचते हैं, यह तारे के पदार्थ की अपारदर्शिता पर निर्भर करता है। अगर संवहन (convection) हो तो एक दूसरी जटिलता उत्पन्न हो जाती है। वह यह कि अगर तारे के अंदर गैस की लहरें चलती हैं तो ये लहरें ऊर्जा को गर्म केन्द्र से ठंडी सतह तक शीघ्र ले जा

सकती हैं। इन सभी प्रश्नों का ऐडिन्गटन ने गहराई से अध्ययन किया और अपनी पुस्तक ''तारों की आंतरिक रचना'' (1919) में छापा। बाद में कई वैज्ञानिकों ने इन प्रश्नों का अन्वेषण किया। सबसे बड़ा अन्वेषण भारतीय खगोलिक वैज्ञानिक सुब्रमनियम चन्द्रशेखर (1910) ने किया। उनका महान काम उनकी पुस्तक ''तारों की संरचना'' (1939) में प्रकाशित है।
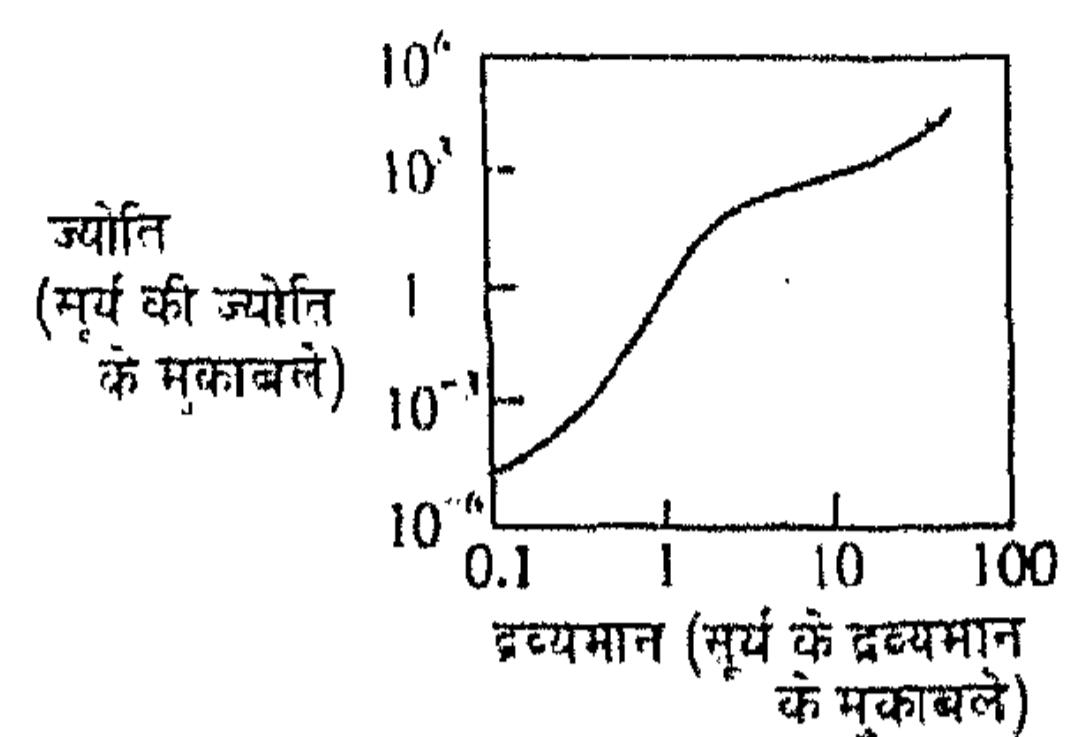
चित्र 31. **मुख्य अनुक्रम में तारों के द्रव्यमान-ज्योति का संबंध**

इस अन्वेषण का एक साधारण परिणाम सूर्य के केन्द्र में तापमान, दाब और घनत्व की जानकारी प्राप्त करना है। सूर्य की त्रिज्या (7×10^5 किलोमीटर), द्रव्यमान (2×10^{30} किलोग्राम) और सतह का तापमान ($6000°$ सेल्सियस)। तापमान परिकलन करने से पता चलता है कि सूर्य के केन्द्र का तापमान एक करोड़ डिग्री सेल्सियस (10^7 डिग्री सेल्सियस) होगा। इसका आंतरिक घनत्व जल से 150 गुना है और दाब पृथ्वी के वायुमंडल से एक करोड़ गुना है।

ऐडिन्गटन ने एक नियम प्रस्तावित किया जो एक तारे के द्रव्यमान और ज्योति से संबंध रखता है। इस नियम के अनुसार मुख्य अनुक्रम के तारों की ज्योति उनके द्रव्यमान से निश्चित होती है, इसलिए इस अनुक्रम के दो तारे जिनका द्रव्यमान बराबर है, बराबर ऊर्जा विकिरण करेंगे (चित्र: 31)। मुख्य अनुक्रम के तारे, जिनका द्रव्यमान और ज्योति ज्ञात है, ऐडिन्गटन के सूत्र से सहमत हैं।

13

एक तारे का जीवन

पिछले अध्याय में हमने देखा है कि एक तारा गैस के एक बादल के निपात (collapse) से बनता है जो कि तब तक गर्म और घना होता जाता है जब तक नाभिकीय क्रिया शुरू नहीं हो जाती। लेकिन अगर तारे का द्रव्यमान सूर्य के 1/10 द्रव्यमान से भी कम है तो उसके केन्द्रीय क्षेत्र का तापमान और दाब कभी इतने ऊंचे नहीं होंगे कि नाभिकीय अभिक्रिया शुरू हो सके। इन छोटे तारों की सतह का तापमान 2500^0 से. से अधिक नहीं हो पाता है और इनकी ऊर्जा का स्रोत संकुचन (contraction) होने से पैदा होने वाली ऊर्जा है। इन्हें लाल बौने (red dwarfs) कहते हैं। ये टाइप 'आर', 'एन' और 'एस' के तारे हैं और हर्ट्जस्प्रुंग-रसेल आरेख में नीचे दाहिनी ओर इनका स्थान है। ये धीरे-धीरे ठंडे होते हैं और जीवन समाप्त होने पर घनी, छोटी और ठंडी वस्तु की भांति हो जाते हैं।

इनसे बड़े तारे अपने केन्द्रीय क्षेत्र में काफी मात्रा में तापमान और दाब

पैदा करते हैं जिससे हाइड्रोजन संगलन (fusion) क्रिया शुरू हो जाती है (वास्तव में संगलन अभिक्रिया जटिल है और कई चरणों में पूरी होती है)। सरलता के लिए यहां साधारण रूप से समझाया गया है। अध्याय 15 में इसके कुछ चरण विस्तार में दिखाये गये हैं। संगलन अभिक्रिया में प्रोटॉन (हाइड्रोजन का नाभिक) एक दूसरे के साथ तेजी से टकराते हैं जिससे वे जुट कर हीलियम नाभिक बन जाते हैं। जब यह स्थिति पैदा हो जाती है तब तारा मुख्य अनुक्रम का तारा हो जाता है और बहुत लम्बे समय तक ताप और प्रकाश का विकिरण करता है। सूर्य के जैसा एक तारा मुख्य अनुक्रम में हाइड्रोजन संगलन क्रिया की अवस्था में 10^{10} (हज़ार करोड़) वर्ष तक रहता है। इससे अधिक द्रव्यमान के तारे शीघ्र ही अपना हाइड्रोजन जला देते हैं। वह तारा जिसका द्रव्यमान सूर्य से पन्द्रह गुना हो वह इस अवस्था में केवल एक करोड़ (10^7) वर्ष तक रह सकता है। जब तक तारा मुख्य अनुक्रम में रहता है तब तक उसका तापमान या प्रकाश नहीं बदलता।

हट्जस्प्रुंग-रसेल आरेख की मुख्य-अनुक्रम पट्टी इसलिए प्रमुख है क्योंकि तारे अपनी अधिकतम जीवनी इसी अवस्था में बिताते हैं। इस अवस्था में तारे में अधिकतम पदार्थ हाइड्रोजन होता है जो कि केन्द्रीय भाग में हीलियम में बदलता रहता है। अंत में तारे का क्रोड (core) हीलियम का हो जाता है। जिसके चारों ओर हाइड्रोजन का कवच रहता है। इस कवच में भी हाइड्रोजन हीलियम में बदलता रहता है।

जब हीलियम क्रोड बन जाता है तो उसके बाद बहुत सी क्रियाएं तेजी से होती हैं और तारा मुख्य अनुक्रम से अलग हो जाता है। जला हुआ क्रोड विकिरण करना बंद कर देता है जिसके फलस्वरूप विकिरण दाब कम हो जाता है। चूंकि यह विकिरण दाब तारे को सहारा देता है अतः इसके कम हो

जाने से गुरुत्व निपात को रोकने का अब कोई साधन नहीं रह जाता और क्रोड का संकुचन होने लगता है। संकुचन से ताप फिर बढ़ता है। बढ़ते हुए तापमान से कवच के हाइड्रोजन का जलना और तेज हो जाता है। इससे विकिरण दाब बढ़ जाता है और वह हाइड्रोजन कवच को बाहर की ओर ढकेलता है। इससे आवरण का प्रसार होता है और प्रसार के साथ ताप कम होता है। इस प्रकार तारा बड़ा और ठंडा होता जाता है। अतः यह तारा अब लाल विशाल की ओर प्रगति कर रहा है और इसका क्रोड घना और गर्म हो रहा है। जलने वाले हाइड्रोजन कवच से और हाइड्रोजन क्रोड में आ जाता है।

चित्र 32.

इसके आगे क्या होगा यह तारे के द्रव्यमान पर निर्भर करता है। लाल विशाल (जिसका द्रव्यमान लगभग सूर्य के द्रव्यमान के बराबर है) में क्रोड का निपात कुछ समय बाद बंद हो जायेगा। इसका कारण अब हम बताते हैं। हीलियम क्रोड को हम इलेक्ट्रानों का सागर समझ सकते हैं जिसमें हीलियम की नाभिकियां तैर रही हैं। जब घनत्व बहुत बढ़ जाता है और इलेक्ट्रान सागर का घनत्व और नहीं बढ़ सकता है तो इस अवस्था में क्रोड असंपीड्य (incompressible) हो जाता है। ऐसे क्रोड के पदार्थ को अपभ्रष्ट (degenerate) कहते हैं। जब ऐसी अवस्था आ जाती है तब क्रोड का संकुचन रुक जाता है। परिकलन करने से पता चला है कि इस समय लाल
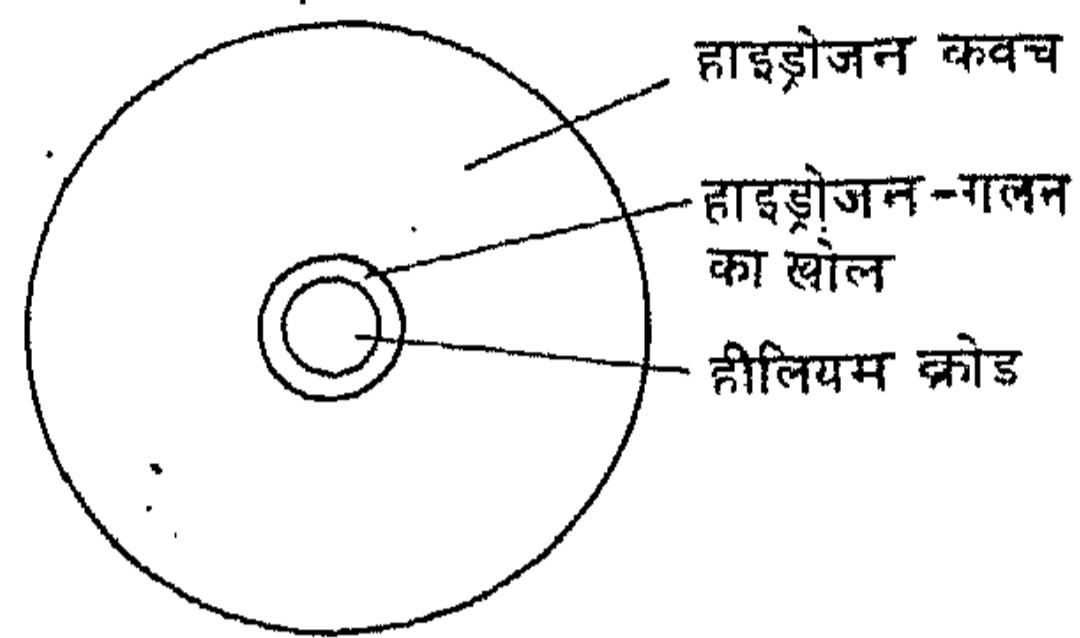
विशाल के क्रोड के बाहरी अवरण की गैस प्रक्षुब्ध हो जाती है और अन्दर चलने वाली संवहन धारायें (convection current), जलने वाले हाइड्रोजन कवच से ऊर्जा को सतह पर ले जाती हैं। इससे लाल विशाल तारों की ज्योति और बढ़ जाती है। इनका आकार भी बढ़ता है। यदि किसी तारे का द्रव्यमान सूर्य के 4/10वें द्रव्यमान से कम हो तो उसकी हाइड्रोजन गैस के जलकर समाप्त होते ही उस तारे का निपात हो जायेगा और यह एक सफेद बौना बन जायेगा।

सफेद बौना एक बहुत ही छोटा तारा है जिसका आमाप (size) पृथ्वी के बराबर होता है। इसके पदार्थ अपभ्रष्ट बहुत ही उच्च घनत्व (पानी के घनत्व के करोड़ गुना) के होते हैं। यह तारा साधारण (अभ्रष्ट) गैस के एक पतले आवरण से ढका रहता है।

यदि लाल विशाल तारे का द्रव्यमान सूर्य के बराबर हो तो उसके अपभ्रष्ट क्रोड का तापमान 10^8 डिग्री सेल्सियस तक हो सकता है और इस अवस्था में एक नयी नाभिकीय क्रिया आरम्भ हो सकती है जिसमें हीलियम नाभिक एक दूसरे से मिलकर कार्बन नाभिक बना सकते हैं। इस क्रिया को हीलियम ज्वलन (helium burning) कहते हैं। यदि क्रोड में साधारण हीलियम गैस होती तो जलने से पैदा होने वाली गर्मी के कारण गैस का प्रसार होता, प्रसार से तापमान में गिरावट आती, और हीलियम का जलना स्थायी और नियंत्रित गति से होता। लेकिन क्रोडमें हीलियम साधारण गैस के रूप में नहीं है, बल्कि यह अपभ्रष्ट गैस है इसलिए इसका प्रसार नहीं होता है। इसकी गर्मी बढ़ती जाती है और हीलियम का जलना तेज होता जाता है। यह क्रिया उस स्थिति तक चलती है जब तक अपभ्रष्टता बनी रहती है। उसके बाद एकाएक अपभ्रष्टता समाप्त हो जाती है। क्रोड में यह एक साधारण

हीलियम गैस बन जाती है जिसका तापमान और दाब बहुत ही ऊंचा होता है। इस समय इसका भयंकर प्रसार होता है। इसको हीलियम दमक (helium flash) कहते हैं। जलते हुए हाइड्रोजन कवच के अचानक प्रसार से इसके तापमान में कमी होती है और इससे हाइड्रोजन का जलना काफी धीमा हो जाता है। अब यह तारा एक नयी स्थिति में आ जाता है जिसमें मुख्य ऊर्जा पैदा करने वाली क्रिया हीलियम ज्वलन है। इस स्थिति में विकिरण दाब, हाइड्रोजन ज्वलन की अवस्था के विकिरण दाब से कम होता है और बाहरी कवच सिकुड़ने लगता है। जैसे-जैसे यह सिकुड़ता है, सतह का तापमान बढ़ता है। अंत में, जब पूरा हीलियम जल जाता है तब तारे का निपात होता है और यह सफेद बौना बन जाता है।

लाल विशाल तारों में, जिसका द्रव्यमान सूर्य से अधिक है, हीलियम का जलना क्रोड के अपभ्रष्ट होने से पहले ही शुरू हो जाता है इसलिए इनमें हीलियम दमक नहीं देखी जाती। हीलियम के स्थायी रूप से जलने से कार्बन क्रोड बनता है, जिसका संकुचन होता है। संकुचन के होने से लाल विशाल का खोल (envelop) प्रक्षुब्ध हो जाता है। यदि तारे का द्रव्यमान बहुत अधिक नहीं है (यानि इसका द्रव्यमान 1.1 और 1.5 गुना सूर्य के द्रव्यमान के बीच है) तो विकिरण दाब और खोल की प्रक्षुब्धता के कारण लाल विशाल का खोल अलग होकर आकाश में दूर चला जाता है। इस तरह ग्रह निहारिकाओं (planetary nebulae) की उत्पत्ति होती है। ग्रह निहारिका दीप्तिमान गैस का विशाल खोल है जिसका विस्तार कई प्रकाश वर्ष है और जिसके केन्द्र में एक तारा होता है। फोटो में ग्रह निहारिका धूम्र-वलय (smoke ring) जैसी दिखायी देती है। लेकिन यह एक भ्रम है—वास्तव में गैसें तारे को परिबद्ध करती हैं। ग्रह निहारिका का यह केन्द्रीय तारा, लाल

विशाल के बीच का भाग है जिसके खोल का ज्यादातर भाग खत्म हो गया है। ऐसे तारों की सतह का तापमान काफी ऊंचा रहता है (50,000° से. से 100,000° से. तक)। जब इनका संकुचन होता है और इनका तापमान कम हो जाता है तब ये सफेद बौने बन जाते हैं।
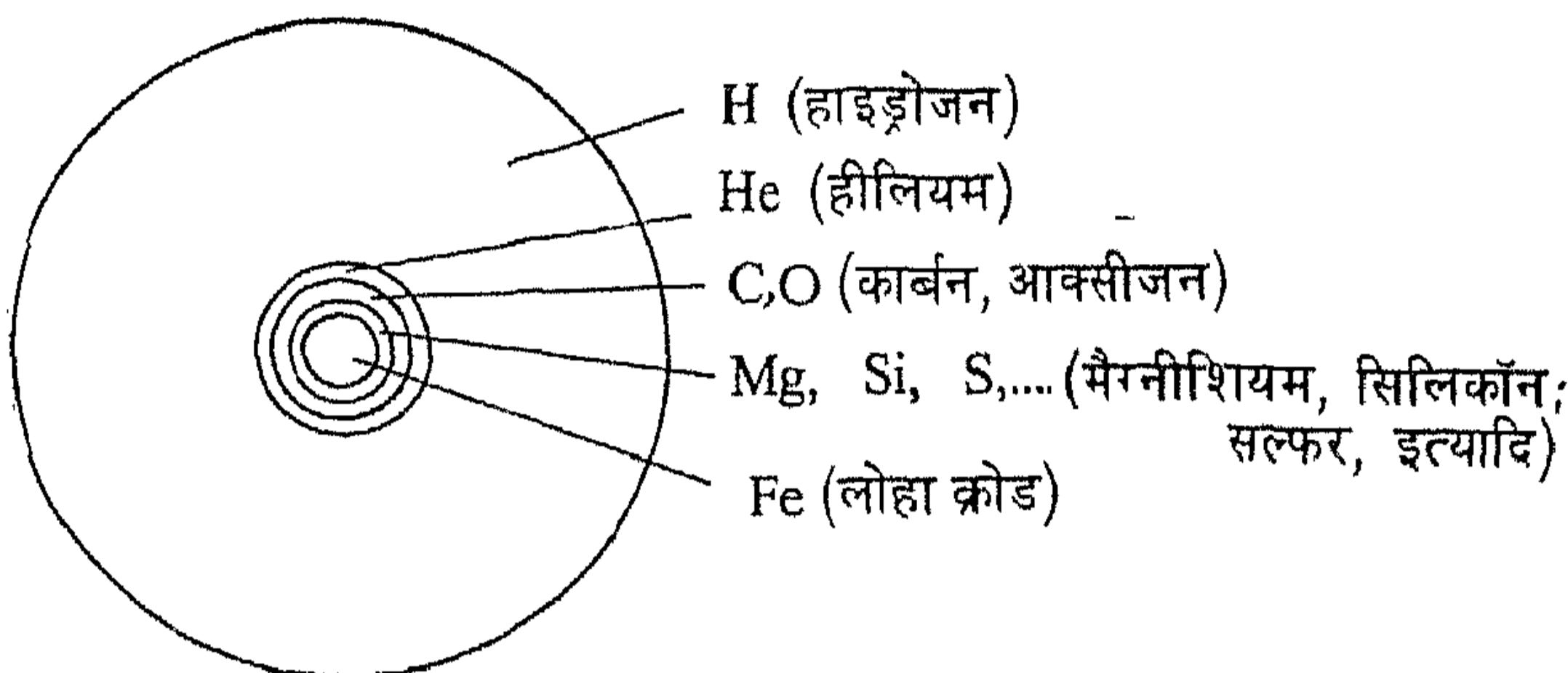
चित्र 33. अति विकसित अति द्रव्यमान तारा

यदि किसी तारे का द्रव्यमान सूर्य से बहुत अधिक है, तब यह विकास के कई चरणों से गुज़रेगा। ये चरण इस प्रकार हैं : हाइड्रोजन ज्वलन का चरण, हीलियम ज्वलन का चरण, कार्बन ज्वलन का चरण, इत्यादि (अगला अध्याय देखें)। प्रत्येक चरण में पिछले चरण के मुकाबले भारी नाभिक (nuclei) बनते हैं। इस प्रकार लाल विशाल (या अति विशाल) तारों का क्रोड प्याज की तरह परतदार और जटिल होता है। सबसे भारी नाभिक जो संगलन अभिक्रिया द्वारा लाल विशाल के क्रोड में बन सकता है वह लौह-धातु का नाभिक है। वे तारे जो सूर्य से दस गुना या अधिक द्रव्यमान के हैं, उनके क्रोड में लोहा उनकी अंतिम लाल विशाल अवस्था में बनता है।
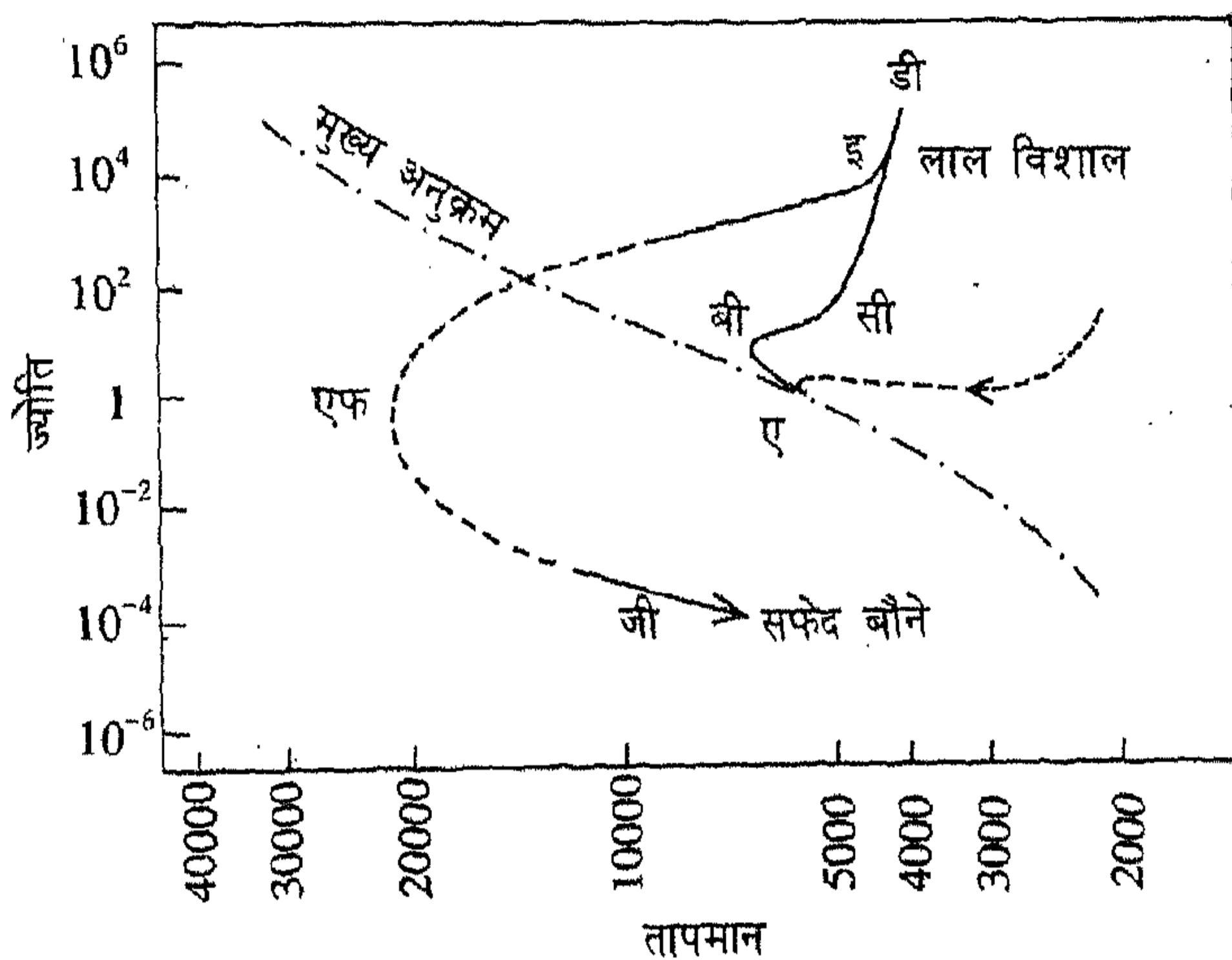
चित्र 34. **एक सूर्य के द्रव्यमान के बराबर के तारे का विकास**
ए. हाइड्रोजन के जलने का आरंभ, एच.आर. आरेख में इसका स्थान
बी. हीलियम क्रोड का बनना　सी. क्रोड का अपभ्रष्ट होना
डी. हीलियम फ्लैश　इ. हीलियम का स्थिर रूप से जलना
एफ. कार्बन क्रोड का बनना　जी. क्रोड का अपभ्रष्ट होना

चित्र 34 में सूर्य के द्रव्यमान के बराबर द्रव्यमान वाले तारे का विकास पथ एस-आर आरेख में दिखाया गया है।

□□

14

संगलन अभिक्रिया

इस अध्याय में हम, तारों के अन्दर होने वाली नाभिकीय अभिक्रियाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन करेंगे। एक परमाणु का नाभिक प्रोटानों और न्यूट्रानों से बनता है। यदि हम प्रत्येक न्यूट्रान एवं प्रोटान का अलग-अलग द्रव्यमान लेकर कुल उपस्थित न्यूट्रानों एवं प्रोटानों के द्रव्यमान का योग निकालें तो हम यह पाते हैं कि नाभिक का द्रव्यमान इस योग से कम होता है। इस द्रव्यमान की कमी का संबंध बंधन-ऊर्जा (Binding Energy) से है। इसी ऊर्जा के कारण नाभिक बंधा रहता है। प्रोटान (p) का विद्युत चार्ज धनात्मक (positive) और न्यूट्रान (n) का उदासीन (neutral) होता है। दोनों का द्रव्यमान तकरीबन बराबर है परन्तु न्यूट्रान थोड़ा भारी है। न्यूट्रान के क्षय होने से प्रोटान, इलेक्ट्रान (e^-) और ऐन्टी-न्यूट्रीनो ($\bar{\nu}$) बनते हैं। इलेक्ट्रान का चार्ज ऋणात्मक (negative) है और इसका द्रव्यमान प्रोटान के द्रव्यमान का लगभग 1/2000 वां है। ऐन्टी-न्यूट्रीनो उदासीन है और

इसका द्रव्यमान शून्य के सन्निकट है। इस क्षय अभिक्रिया को हम इस प्रकार समझ सकते हैं :

$$n \rightarrow p + e^{-} + \nu$$
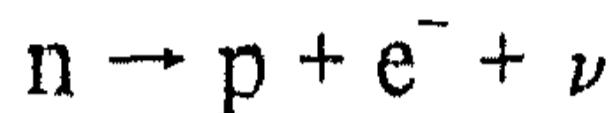
एक स्थायी नाभिक में न्यूट्रान का क्षय नहीं होता है क्योंकि अगर हम न्यूट्रान की जगह प्रोटान लेते हैं तो उस नाभिक का द्रव्यमान थोड़ा बढ़ जाएगा और इस बढ़े द्रव्यमान की शून्य से सृष्टि नहीं हो सकती। दूसरे शब्दों में बंधन-ऊर्जा स्थायी नाभिक में न्यूट्रान का क्षय रोकती है। वैसे कुछ नाभिक स्थायी नहीं होते हैं। जब ऐसे किसी अस्थायी नाभिक में एक न्यूट्रान प्रोटान में बदल जाता है (जैसा ऊपर दिखाया गया है) तो इसे नाभिक का बीटा-क्षय (beta decay) कहते हैं।

हाइड्रोजन के नाभिक में केवल एक प्रोटान होता है। ड्यूटेरियम, हाइड्रोजन का आइसोटोप (isotope) है और इसका नाभिक एक प्रोटान और एक न्यूट्रान से बना है। साधारण हीलियम के नाभिक में दो न्यूट्रान और दो प्रोटान होते हैं। इसका प्रतीक $^{4}_{2}He$ है। इस प्रतीक में ऊपर वाली संख्या नाभिक में कुल प्रोटान और न्यूट्रान की संख्या और नीचे वाली संख्या केवल प्रोटान की संख्या दर्शाती है। केवल प्रोटान की संख्या परमाणु संख्या (Atomic number) बताती है। नाभिक $^{4}_{2}He$ को ऐल्फा-कण भी कहते हैं। ऐल्फा-कण को बताने के लिए हम प्रतीक 'α' का प्रयोग करते हैं। हीलियम का एक आइसोटोप भी है जिसमें एक न्यूट्रान और प्रोटान होता है। इसे $^{3}_{2}He$ (हीलियम 3) भी कहते हैं।

तारों में हाइड्रोजन ज्वलन, एक संगलन अभिक्रिया है जिसमें प्रोटान एक दूसरे से टकराते हैं और एल्फा-कण और विकिरण उत्पन्न होता है। ये अभिक्रिया तीन चरणों में पूरी होती है, जिसे pp[1] चेन कहते हैं। पहले दो

प्रोट्रान आपस में टकराकर ड्यूटेरियम का नाभिक, पाजिट्रान और न्यूट्रीनो बनाते हैं।

$$p + p \rightarrow {}^{2}_{1}H + e^{+} + \nu$$
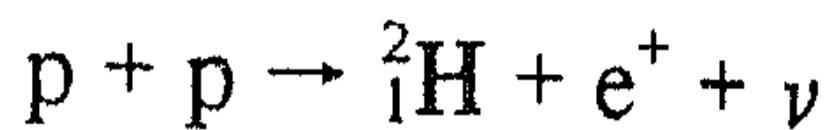
इसके बाद डयूटरान तीसरे प्रोटान से टकराता है। इसे ${}^{3}_{2}He$ बनता है।

$${}^{2}_{1}H + p \rightarrow {}^{3}_{2}He + \gamma$$
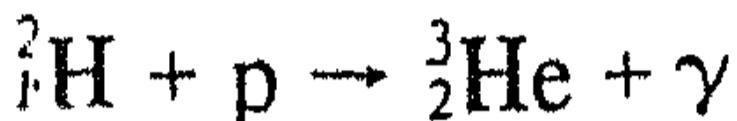
यहां γ फोटान (photon) या विद्युत चुम्बकीय विकिरण का प्रतीक है। इस क्रिया में जो फोटान पैदा होते हैं उन्हीं से तारों में प्रकाश और गर्मी आती है। तीसरे चरण में दो ${}^{3}_{2}He$ टकराकर ऐल्फा-कण बनाते हैं।

$${}^{3}_{2}He + {}^{3}_{2}He \rightarrow {}^{4}_{2}He + p + p$$
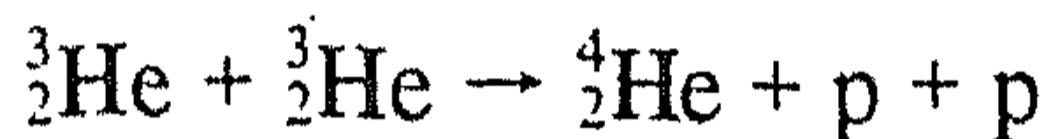
इस pp^1 शृंखला में होने वाली पारस्परिक क्रियाओं का अनुक्रम नीचे दिये आरेख से और भी स्पष्ट होगा:

$$p \xrightarrow[\downarrow e^{+},\ \nu]{\downarrow p} {}^{2}_{1}H \xrightarrow[\downarrow \gamma]{\downarrow p} {}^{3}_{2}He \xrightarrow[\downarrow 2p]{\downarrow {}^{3}_{2}He} \alpha$$
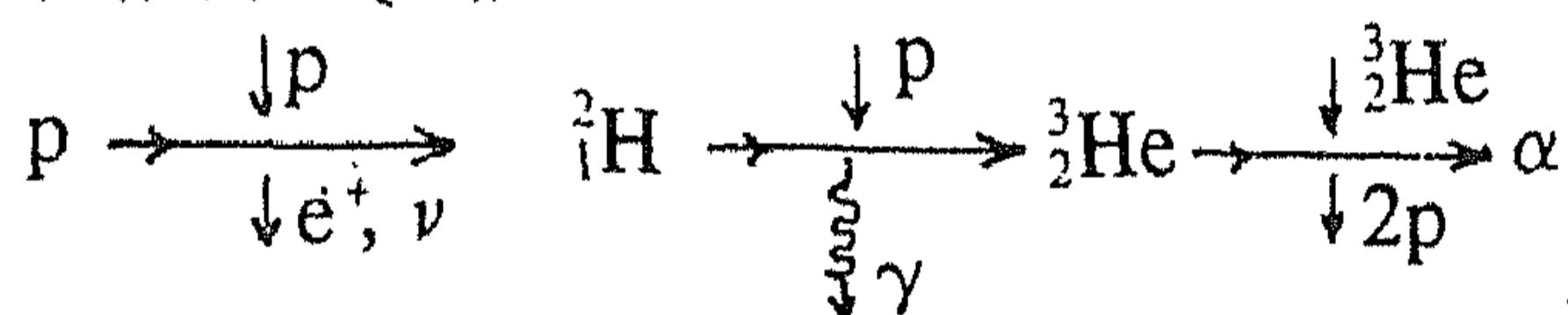
एक दूसरी, मगर थोड़ी जटिल विधि द्वारा भी हाइड्रोजन से हीलियम बन सकता है। इसे pp^2 शृंखला कहते हैं। यह pp^1 की तरह होती है लेकिन बाद में अनुक्रम दूसरा हो जाता है। यह अनुक्रम इस प्रकार है

$${}^{3}_{2}He \xrightarrow[\downarrow \gamma]{\alpha \downarrow} {}^{7}_{4}Be \xrightarrow[\downarrow \nu]{e \downarrow} {}^{7}_{3}Li \xrightarrow[\downarrow \alpha]{\downarrow p} \alpha$$
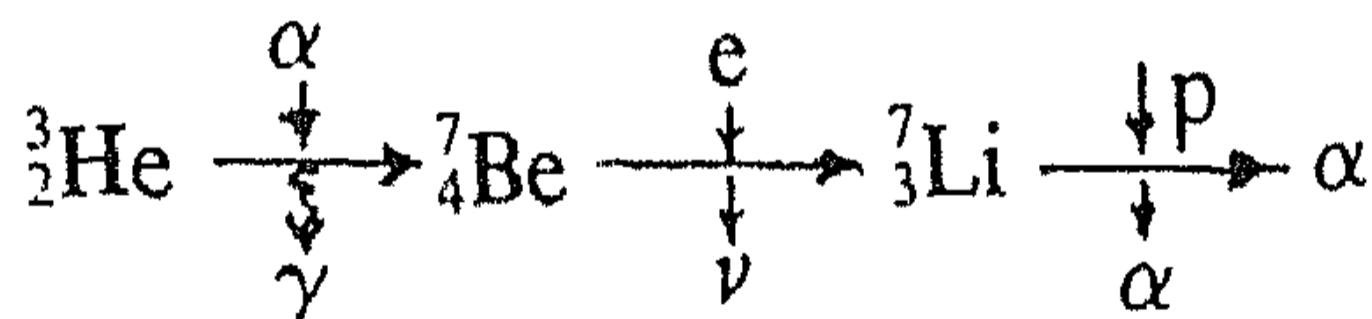
pp^2 शृंखला के पहले चरण में एक बार बेरिलियम ${}^{7}_{4}Be$ के बन जाने पर (जैसा ऊपर दिखाया गया है), हीलियम एक नयी शृंखला pp^3 से बन सकता है :
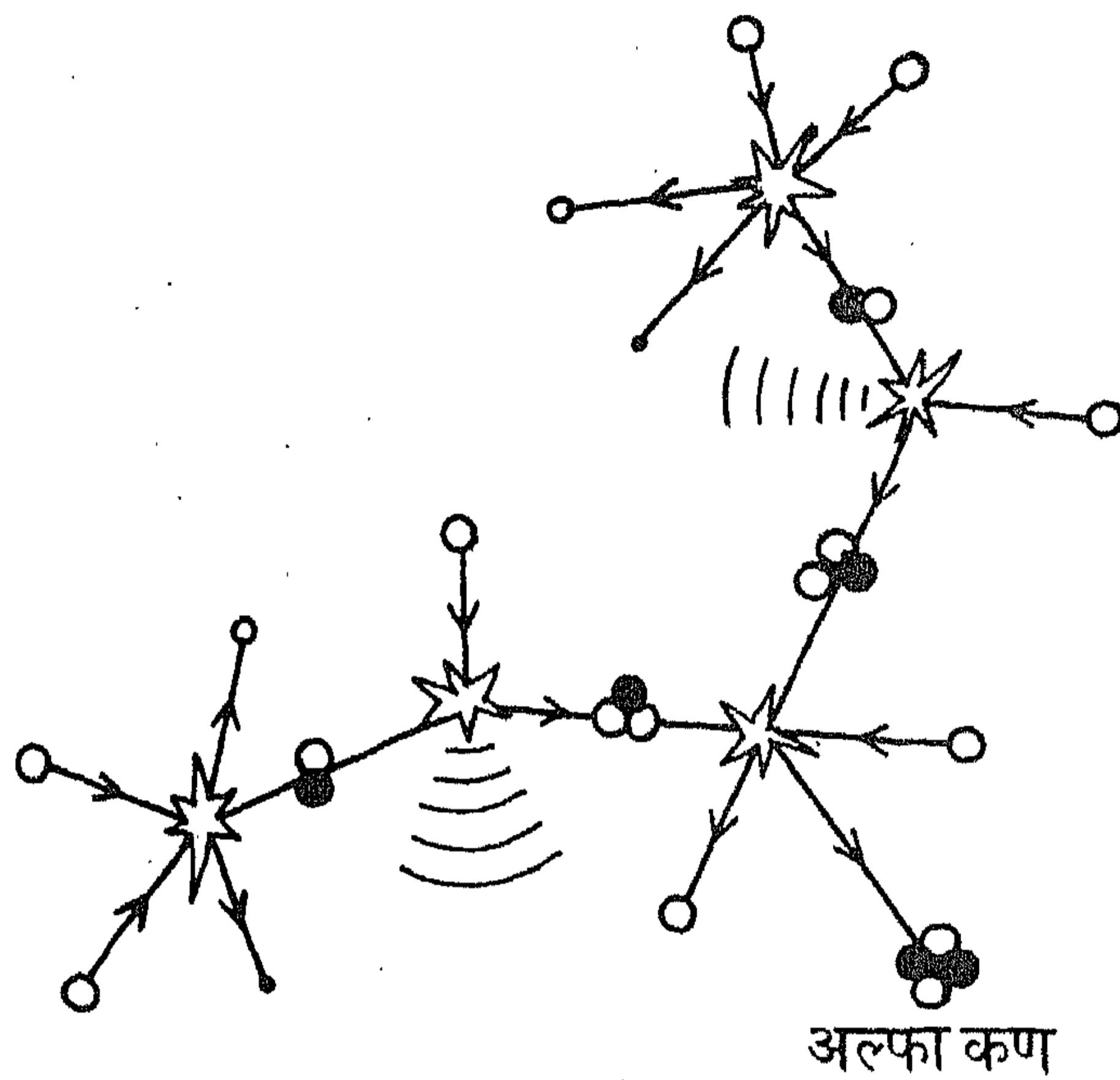
चित्र 35. **pp[1]शृंखला— ऐल्फा कण का प्रोटान के टक्कर से बनना**

$$^{7}_{4}Be \xrightarrow[\gamma]{p} {}^{8}_{5}B \xrightarrow[e^+, \gamma]{} {}^{8}_{4}Be \xrightarrow[\alpha]{} \alpha$$
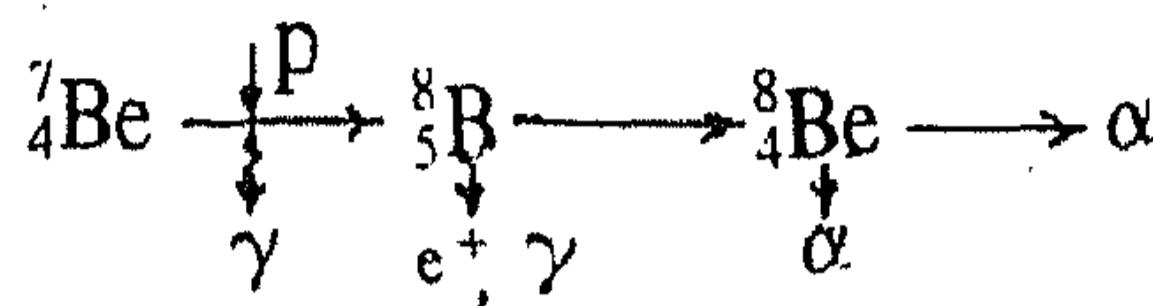
हाइड्रोजन ज्वलन में कार्बन-नाइट्रोजन चक्र (CN cycle) का भी कुछ महत्व है। लेकिन यह CN चक्र तभी मुमकिन है जब कुछ कार्बन नाभिक उपलब्ध हों। इस अभिक्रिया में कार्बन नाभिक खत्म नहीं होते बल्कि ये उत्प्रेरक का काम करते हैं। कार्बन नाइट्रोजन चक्र इस प्रकार है :

$$p \xrightarrow[\gamma]{^{12}_{6}C} {}^{13}_{7}N \xrightarrow[\gamma]{p} {}^{13}_{6}C \xrightarrow[\gamma]{p} {}^{14}_{7}N \xrightarrow[\gamma]{p} {}^{15}_{8}O \xrightarrow[e^+, \nu]{} {}^{15}_{7}N \xrightarrow[^{12}_{6}C]{P} \alpha$$
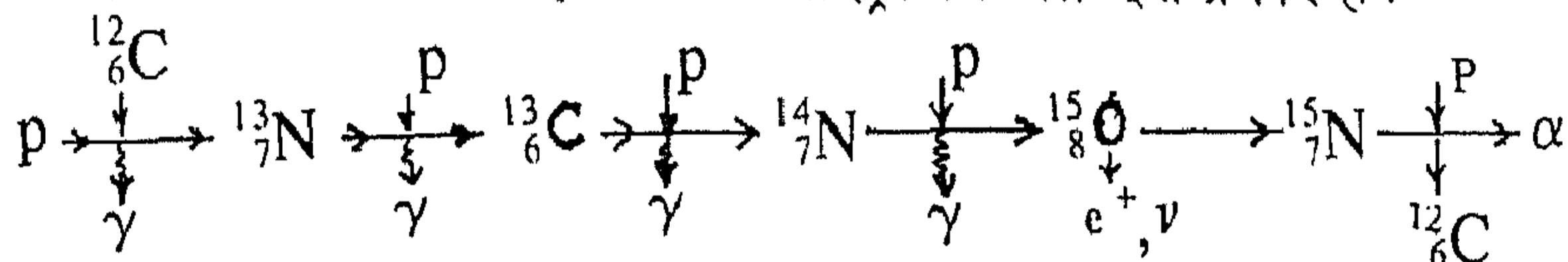
हीलियम ज्वलन में तीन ऐल्फा-कण जुट कर कार्बन नाभिक बनाते हैं। यह दो चरणों की अभिक्रिया है जिसमें, पहले दो अल्फा-कण मिलकर बेरिलियम नाभिक (जो स्थायी नहीं है) बनाते हैं जो एक अल्फा-कण का अवशोषण करके कार्बन नाभिक बन जाता है।

$$\alpha + \alpha \longrightarrow {}^{8}_{4}Be \xrightarrow[\gamma]{\alpha} {}^{12}_{6}C$$
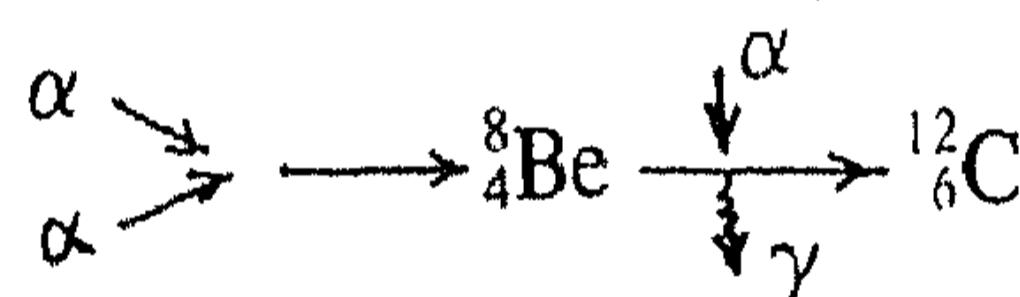
संगलन अभिक्रियाऐं जिनमें भारी नाभिक तारों के विकास के अंतिम चरण में बनते हैं, मुख्य रूप से ऐल्फा-कणों का नाभिकों द्वारा अवशोषण है–

$${}^{12}_{6}C \xrightarrow[\gamma]{\alpha} {}^{16}_{8}O \xrightarrow[\gamma]{\alpha} {}^{20}_{10}Ne \xrightarrow[\gamma]{\alpha} {}^{24}_{12}Mg \xrightarrow[\gamma]{\alpha} {}^{28}_{14}Si \xrightarrow[\gamma]{\alpha} \cdots {}^{52}_{26}Fe$$
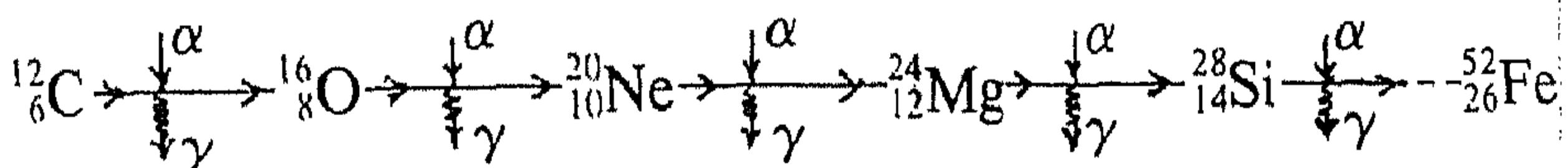
यह शृंखला $^{52}_{26}Fe$ के आगे नहीं बढ़ सकती क्योंकि ऐल्फा-कण और $^{52}_{26}Fe$ के द्रव्यमानों को मिलाकर प्राप्त द्रव्यमान $^{56}_{28}Ni$ के द्रव्यमान से कम है

15

विस्फोटी तारा

कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी तारे की ज्योति अचानक बढ़ जाती है। एक दो दिन के अन्दर उसका प्रकाश 10,000 या 100,000 गुना बढ़ जाता है। प्राचीन समय में भी ऐसी परिघटना देखी गयी थी। जब भी ऐसी घटना होती है तो ऐसा लगता है कि एक नया तारा आकाश में उदय हो गया है। इसलिए इसका नाम "नोवा" (लैटिन में "नया") पड़ा। लेकिन नोवा कोई नया तारा नहीं होता है, बल्कि वह तारा जिसकी ज्योति इतनी कम थी कि पहले दिखाई नहीं दिया किन्तु अचानक ज्योति बढ़ने से दिखायी पड़ने लगा, नोवा कहलाता है। हाल ही में एक नोवा सिग्नस तारामंडल (Cygnus Constellation) में अगस्त 1975 में देखा गया और दूसरा 1987 में।

अचानक प्रकाश बढ़ने के बाद नोवा धीमे पड़ जाते हैं और कुछ सप्ताह में अपनी मानक ज्योति पर पहुँच जाते हैं। कुछ नोवा तो चंद ही दिनों में इस स्थिति में पहुँच जाते हैं और कुछ कई वर्षों में।

नोवा का स्पेक्ट्रम, इसकी चमत्कारी अवस्था में, नीले की ओर विस्थापित होता है जैसा कि विस्फोट के बाद गैस का तीव्र गति से विस्तार होने पर होना भी चाहिए।

यह पाया गया है कि नोवा का विस्फोट संवृत युग्मतारे में होता है। इसलिए अब इस विषय में सोचना जरूरी है कि जब दो तारे एक दूसरे के चारों ओर एक दूसरे के निकट घूमते हैं (और दोनों में से एक लाल विशाल बन जाता है) तब क्या हो सकता है? ऐसी अवस्था में लाल विशाल का बाहरी कवच अपने साथी तारे के गुरुत्व आकर्षण के कारण विकृत हो जाता है। धीरे-धीरे लाल विशाल के विस्तार होने पर एक ऐसा क्रान्तिक (critical) चरण आता है कि इसका पदार्थ इसके साथी की ओर अभिकर्षित हो जाता है। हाइड्रोजन का एक सेतु बन जाता है जो उन गैसों से बनता है जो लाल विशाल से निकल कर उसके साथी के चारो ओर एक रिंग बनाती हैं। युग्मतारा बीटा लिरे (Beta Lyrae) ऐसी स्थिति का प्रारूपिक उदाहरण है (चित्र 36)। रिंग से हाइड्रोजन निकल कर लगातार साथी तारे की सतह पर इकट्ठी होती हैं जिससे सतह का तापमान बढ़ जाता है। जब सतह का तापमान इतना बढ़ जाता है कि हाइड्रोजन संगलन अभिक्रिया हो सके, तब विस्फोटन हो जाता है और जब सहचर तारे की सतह का विस्फोटन होता है, तब हमें यह विस्फोटन नोवा के रूप में दिखाई देता है। चूंकि दोनों तारों में से कोई भी तारा विस्फोट के कारण पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होता है, केवल सहचर तारे का बाहरी भाग ही नष्ट होता है, इसलिए यह प्रक्रम फिर से शुरू हो सकता है और कहीं 100 वर्ष बाद फिर नोवा विस्फोटन हो सकता है।

हमारा सूर्य एक चक्रिका (disc) जैसे मंडल में बसता है। जिसमें दस हजार करोड़ तारे हैं और इसे आकाश-गंगा (Milky way Galaxy) कहते
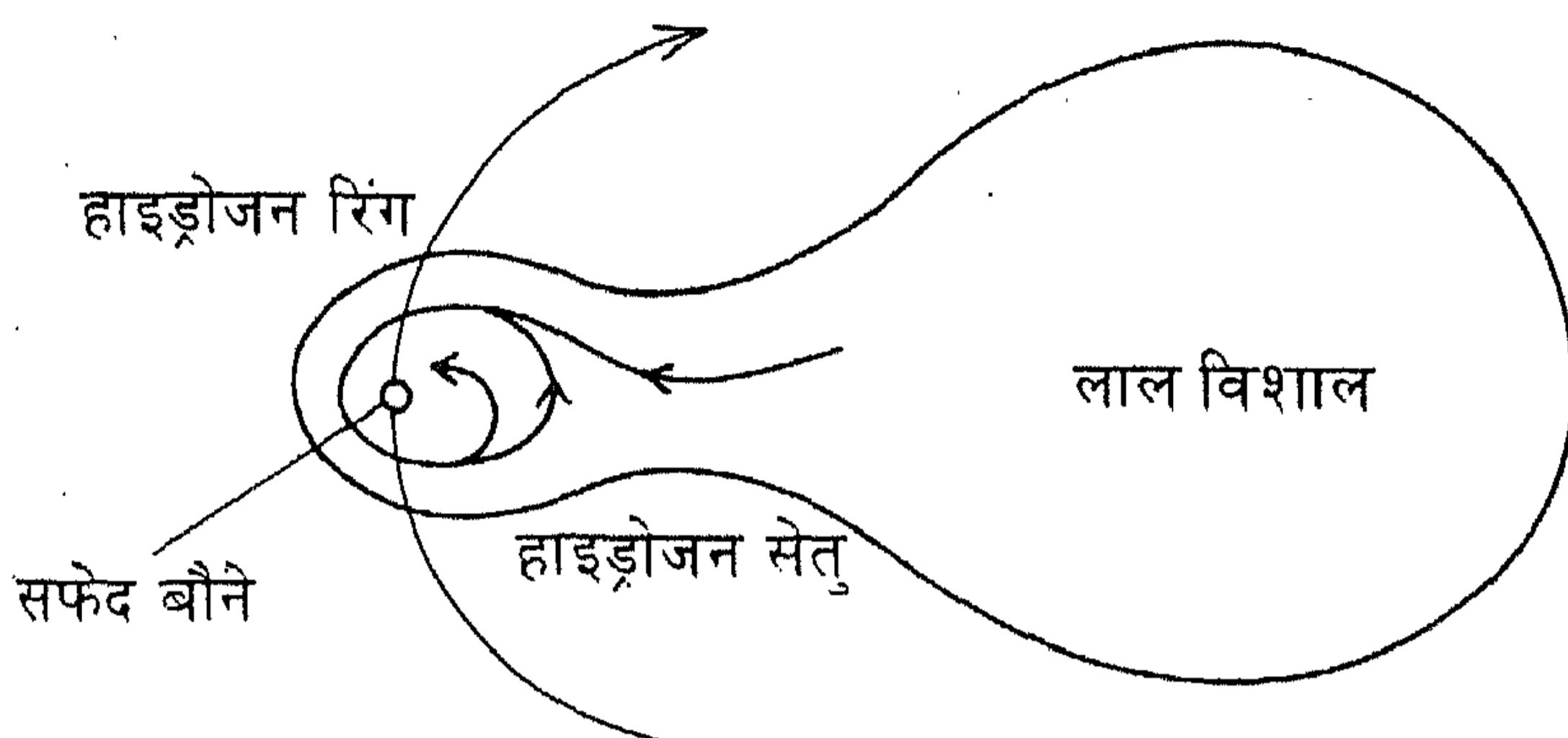
चित्र 36. **बीटा लिरे समूह**

हैं (अध्याय 18 देखें)। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस आकाश गंगा में प्रतिवर्ष कई दर्जन नोवाओं का विस्फोटन होता है। लेकिन इसमें से अधिकतर दिखायी नहीं देते क्योंकि चक्रिका की धूल द्वारा इनके प्रकाश का अवशोषण हो जाता है। हमें नोवाओं के विषय में अधिकतर ज्ञान दूसरी गैलेक्सी के नोवाओं के अध्ययन से प्राप्त हुआ है।

एक नोवा किसी तारे का सम्पूर्ण विस्फोटन नहीं, बल्कि उस तारे के बाहरी कवच का विस्फोटन है जो युग्मतारे का एक भाग है। फिर भी कभी-कभी पूरा तारा विस्फोट करता है। ऐसी घटना कम होती है लेकिन जब ऐसा होता है तो उसे सुपर्नोवा (Supernova) कहते हैं। सुपर्नोवा के समय तारे की ज्योति (10^{10}) हजार करोड़ गुना बढ़ जाती है। कुछ सुपर्नोवा की चमक एक पूरी गैलेक्सी की चमक के बराबर भी देखी गई है अर्थात् एक

तारा थोड़े समय के लिए दस हजार करोड़ तारों की चमक से भी अधिक चमकीला हो जाता है।

प्राचीन अभिलेख से पता चलता है कि 6 सुपर्नोवा विस्फोटन पिछले कई हजार वर्षों में हमारी गैलेक्सी में हो चुके हैं। सबसे प्रसिद्ध सुपर्नोवा चीन के खगोलज्ञों ने 1054 ए.डी. में अंकित किया। आकाश का वह भाग जहां यह देखा गया था अब एक विचित्र दृश्य है। इसे क्रैब नेबुला (crab nebula) कहते हैं और इसमें ज्वाला भरी गैस के तंतु दिखाई देते हैं। इससे विस्फोटन होने के स्पष्ट चिन्ह मिलते हैं। डाप्लर स्थानान्तरण (Doppler Shift) का मापन करने से और कई वर्षों के फोटोग्राफ मिलाने से यह पता चलता है कि क्रैब नेबुला, विस्फ़ोटन के कारण बना और यह विस्फोट हजार वर्ष पहले हुआ था।

दूसरे सुपर्नोवा के अवशेष आकाश के दूसरे भाग में देखे जा सकते हैं। सिग्नस में वील नेबुला (Veil Nebula) एक सुन्दर उदाहरण है। यह अवशेष उस विस्फोटन का है जो कई हजार वर्ष पहले हुआ था।

किन कारणों से एक तारे का विस्फोटन होता है यह अभी पूरी तरह समझ में नहीं आया है। दो मुख्य प्रकार के विस्फोटन हो सकते हैं—टाइप I सुपर्नोवा जो बहुत विकासपूर्ण तारों का होता है और जिनका द्रव्यमान कम होता है और टाइप II सुपर्नोवा जो भारी द्रव्यमान वाले तारों का होता है। टाइप I सुपर्नोवा विस्फोटन शायद उस समय होता है जब "कार्बन फ्लैश" (Carbon flash) होता है। यह हीलियम फ्लैश के जैसी क्रिया है जिसके विषय में हम पहले बता चुके हैं। कार्बन के अपभ्रष्ट क्रोड में कार्बन के जलने से होने वाला विस्फोट, हीलियम फ्लैश विस्फोट से भी अति भयंकर होता है। इस विस्फोट से पूरे तारे का धमन हो सकता है। टाइप II सुपर्नोवा

विस्फोटन लाल विशाल के लौह क्रोड में होता है (जिनका द्रव्यमान सूर्य से दस गुना है)। जब लौह क्रोड बहुत बड़ा हो जाता है तब इसके केंद्र में घनत्व इतना अधिक बढ़ जाता है कि लोहे के नाभिक, क्रोड के इलेक्ट्रानों को निगलने लगते हैं। नाभिक के प्रोटान, इलेक्ट्रान से मिलकर न्यूट्रान और न्यूट्रीनो बनाते हैं। इस क्रिया के बाद जो नाभिक बनता है वह स्थायी नहीं होता अतः वह नाभिक टूटने लगता है और उसमें से न्यूट्रान और अल्फा-कण निकलते हैं। क्रोड से न्यूट्रान और न्यूट्रीनो की अधिक मात्रा में निकल जाने से, क्रोड का तेजी से निपात होता है। क्रोड के निपात होने से, और न्यूट्रानों की बाढ़ का क्रोड के बाहरी परमाणु नाभिकों द्वारा अवशोषण होने से थोड़े ही समय में बहुत ऊर्जा पैदा हो जाती है। इससे जो विस्फोट होता है वह टाइप II सुपर्नोवा होता है।

16

सफेद बौने और न्यूट्रान तारे

अध्याय 12 में हमने देखा कि तारे अपनी अधिकतम जीवनी मुख्य अनुक्रम पट्टी में बिताते हैं। उसके बाद उनका विस्तार होता है और वे लाल विशाल बन जाते हैं। लाल विशाल के जीवन के अन्तिम चरण में उसके क्रोड का निपात होता है और वह सफेद बौने का रूप ले लेता है।

सफेद बौने का पदार्थ इलेक्ट्रान का अपभ्रष्ट सागर है जिसमें नाभिक तैरते हैं। सैद्धांतिक रूप से सुब्रमनियम चन्द्रशेखर ने अध्ययन किया कि ऐसी अवस्था में किस प्रकार "इलेक्ट्रान अपभ्रष्ट सागर" नियमों का पालन करेगा। इस अध्ययन से उन्होंने सफेद बौनों के कई रोचक गुणों का पता लगाया। इनमें से एक गुण सफेद बौने के द्रव्यमान और त्रिज्या में संबंध बताता है। छोटे सफेद बौनों का द्रव्यमान बड़े बौनों से अधिक है। यह नियम चित्र 37 में आरेखित है।

इस चित्र से तुरन्त यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी सफेद बौने का

द्रव्यमान सूर्य के द्रव्यमान से 1.4 गुने से अधिक नहीं हो सकता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि उस तारे के निपातशील व जले हुए क्रोड का क्या होता है जिसका द्रव्यमान इतना अधिक है कि वह सफेद बौना बन ही नहीं सकता। हमने पहले देखा कि जब छोटे द्रव्यमान के तारे के अन्दर के इलेक्ट्रान अपभ्रष्ट हो जाते हैं तो उसका निपातशील क्रोड सफेद बौना बन जाता है। लेकिन अगर क्रोड का द्रव्यमान सूर्य के द्रव्यमान से 1.4 गुना अधिक है तब ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि तब इलेक्ट्रान अपभ्रष्ट नहीं हो सकेंगे। इसलिये उसके क्रोड का निपात होता जाएगा और सभी संगलन अभिक्रियायें तब तक होती जायेंगी जब तक कि लौह क्रोड न बन जाए। यह निपात तब तक चलेगा जब तक कि केन्द्रीय घनत्व, जल के घनत्व से 10^{11} गुना न हो जाए। इस घनत्व पर परमाणु नाभिक, इलेक्ट्रानों को निगलने लगेंगे। इसकी क्रिया $p + e^{-} \rightarrow n + \bar{\nu}$ है। जैसा कि पिछले अध्याय में समझाया गया है कि इस अभिक्रिया के कारण सुपर्नोवा विस्फोटन हो सकता है, जिससे तारे के क्रोड का अधिकतम भाग निकल सकता है। बचे हुए क्रोड का और भयंकर निपात होगा और इस स्थिति में सभी इलेक्ट्रान, नाभिकों द्वारा निगल लिये जायेंगे और क्रोड में केवल न्यूट्रान रह जायेंगे। निपात उसी अवस्था में रुकेगा जब न्यूट्रान आपस में दब कर इतना करीब आ जायेंगे कि पदार्थ असंपीड्य हो जायेगा। अब क्रोड, न्यूट्रान का अपभ्रष्ट

चित्र 37. **द्रव्यमान-त्रिज्या संबंध सफेद बौनों के लिये**

सागर हो जायेगा ठीक वैसे ही जैसे सफेद बौने इलेक्ट्रान का अपभ्रष्ट सागर हैं। इस अवस्था में इसका घनत्व, जल के घनत्व से 10^{14} गुना हो जायेगा। इस तारे को अब न्यूट्रान तारा कहेंगे। यद्यपि इसका व्यास 20 किलोमीटर के आसपास है फिर भी इसका द्रव्यमान सूर्य से अधिक है। न्यूट्रान तारे का कवच केवल एक या दो सेन्टीमीटर मोटा होता है। कवच के नीचे एक ठोस पटल होता है जो क्रिस्टलीय हो सकता है। इसमें परमाणु एक नियमित संरचना में रहते हैं। पटल के नीचे अपभ्रष्ट न्यूट्रान का सागर होता है जो न्यूट्रान तारे का अधिकतम भाग है।

सफेद बौनों की ही भांति न्यूट्रान तारों का भी सीमान्त द्रव्यमान (limiting mass) होता है। यह सीमांत द्रव्यमान परिशुद्ध रूप से नहीं मालुम है क्योंकि न्यूट्रान तारे के विषय में पूरी जानकारी अभी प्राप्त नहीं है। शायद इसका द्रव्यमान सूर्य के द्रव्यमान से 2 या 2.5 गुना है। यदि किसी तारे का जला हुआ क्रोड इससे भी अधिक द्रव्यमान का है तब वह न तो सफेद बौना और न ही न्यूट्रान तारा बन सकता है। अगर उसके निपात होने पर वह इस अवस्था में पहुँच गया है कि वह पूर्ण रूप से न्यूट्रान का सागर बन गया है तब बिना अपभ्रष्ट हुये इसका निपात होता जायेगा। यह असंपीड्य नहीं है इसलिए इस क्रोड का निपात होना नहीं रुकेगा और इसका अन्तिम परिणाम ''ब्लैक होल'' होगा। इसके विषय में अगले अध्याय में हम पढ़ेंगे।

न्यूट्रान तारे को ढूंढ निकालना और सिद्धांत (Theory) से मिले हुए प्रेक्षण से उसका मेल कराना अभी तक काफी कठिन कार्य था। उनके इतने लघु होने के कारण दूरबीन से देखना भी संभव नहीं था। जिस प्रकार ऐनटोनी हिवइश (Antony hewish) ने 1967 में इन्हें खोजा, वह एक अचम्भे की बात है। इससे खगोलज्ञों में काफी सनसनी फैल गयी। हिवइश

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में रेडियो खगोलज्ञ हैं। जब यह खोज हुई उस समय वे न्यूट्रान तारा नहीं ढूंढ रहे थे बल्कि कुछ और देख रहे थे। अपने विद्यार्थियों के साथ वे विश्व में क्वेसार (Quasar) (अध्याय 23 देखें) से आयी रेडियो तरंग के प्रस्फुरण (Scintillation) की जांच कर रहे थे। यह प्रस्फुरण, रेडियो स्रोत से आने वाले विकिरण में यादृच्छिक परिवर्तन (random variation) होने के कारण होता है। यह परिघटना तारों के स्फुरण (twinkle) जैसी ही है जो पृथ्वी के वायुमंडल जिससे कि प्रकाश की किरणें गुज़रती हैं, में घनत्व के अनियमित परिवर्तन के कारण होता है। यह जानी हुई बात है कि ग्रह, तारों जैसा स्फुरण नहीं करते इसका कारण यह है कि प्रकाश की किरणें ग्रहों के अलग-अलग भाग से वायुमंडल के भिन्न-भिन्न रास्तों से आती हैं, इसलिए रोशनी की तीव्रता का औसत ही प्राप्त होता है जिसके कारण हम स्फुरण नहीं देख पाते हैं। स्फुरण से हम आकाश में किसी दीप्त वस्तु का कोणीय माप पता लगा सकते हैं। इसी प्रकार किसी खगोलिक वस्तु से आ रही रेडियो तरंग के प्रस्फुरण की जांच करके हम उसका कोणीय विस्तार जान सकते हैं। रेडियो तरंगों का प्रस्फुरण पृथ्वी के वायुमंडल के कारण नहीं होता है बल्कि यह क्षितिज में चार्ज वाहित कणों (charged particles) के कारण होता है, विशेषकर सूर्य के कोरोना* से आने वाले चार्ज वाहित कण। रेडियो स्रोत से आयी तरंग के प्रस्फुरण की जांच करते समय जोसलीन बेल (Jocelyn Bell), हिवइश की छात्रा, ने एक स्रोत देखा जिसका प्रस्फुरण अनियमित नहीं था। इसकी रेडियो तरंगें प्रत्येक सेकंड के बाद नियमित स्पंदों में आ रही थीं। दो स्पंदों के बीच का समय स्थायी था (1.33728 सेकंड)। प्रत्येक स्पंद की अवधि एक सेकंड का सौवां भाग थी

* कोरोना : सूर्य के चारों ओर गर्म आयनित गैस का विशाल आवरण

(10^{-2} सेकंड)। 1967 के अंत तक दो और स्पंदीय रेडियो स्रोत पाये गये। ये अद्‌भुत खगोलिक पिंड "पलसार" (Pulsar) के नाम से जाने गये।

आरंभ से ही पलसार के विषय में काफी परिकल्पना थी। पहले यह सोचा गया कि ये संकेत किसी प्रकार के बुद्धिमान जीव (जैसे मनुष्य) दूसरी जगह से भेज रहे हैं। इस परिकल्पना को एल-जी-एम परिकल्पना (LGM hypothesis) ** कहा गया। लेकिन अब खगोलज्ञ इसे न्यूट्रान तारा मानते हैं। इसका प्रमाण 1968 के क्रैब नेबुला में एक पलसार मिलने से प्राप्त हुआ। क्रैब नेबुला एक सुपर्नोवा का अवशेष है। पिछले भाग में हमने यह बताया था कि किसी तारे के टाइप II सुपर्नोवा विस्फोटन के बाद, वह तारा, न्यूट्रान तारे में बदल जाता है।

क्रैब नेबुला के पलसार का कालांक (Period) 0.033 सेकंड है। इसको 1942 में भी देखा गया था और उस समय इसे बहुत ही गर्म व अद्‌भुत तारा समझा गया था क्योंकि इसके स्पेक्ट्रम में कोई भी अवशोषण या उत्सर्जन रेखा नहीं देखी गयी थी। ब्रॉडे ने यह सुझाव दिया कि यह सम्भव है कि यह तारा उस तारे का क्रोड हो, जिसमें 1054 में विस्फोट हुआ था और वह क्रैब नेबुला बन गया। यह तारा सचमुच में पलसार है, यह उस समय साबित हुआ जब इसका दृश्य प्रकाश भी रेडियो तरंग जैसा स्पंदन करते पाया गया।

अब प्रश्न यह उठता है कि न्यूट्रान तारे से किस प्रकार विकिरण नियमित स्पंदों में उत्सर्जित होता है? यह अब हम जानते हैं कि न्यूट्रान तारा एक जले हुए तारा-क्रोड के निपात से बनता है। जैसे-जैसे क्रोड का निपात होता है वैसे-वैसे क्रोड का घूर्णन भी तेजी पकड़ता जाता है। यह कोणीय संवेग के संरक्षण (Conservation of angular momentum) के कारण

** एल-जी-एम (LGM) : लिटिल ग्रीन मेन-छोटे हरे आदमी

होता है। क्रोड के न्यूट्रान तारे में परिवर्तित होते होते, उसके घूर्णन की गति बहुत तेज हो जाती है (एक परिक्रमण एक सेकंड के छोटे अंश में)। साथ ही इसका चुंबकीय क्षेत्र इसके निपात से और प्रबल हो जाता है क्योंकि चुंबकीय बल रेखाएं आपस में बंध जाती हैं। तारे के निपात के साथ वे आपस में और भी ज्यादा कस जाती हैं। इसलिए न्यूट्रान तारा बहुत तीव्र गति से घूर्णन करने वाला वह पिंड है जिसके साथ का चुंबकीय क्षेत्र बहुत प्रबल है। चित्र 38 में चुंबकीय क्षेत्र की बल रेखाएं किसी पिंड (ग्रह, तारे या न्यूट्रान तारे) से गुज़रती हुई दिखाई गई हैं। चुबंकीय अक्ष और घूर्णन अक्ष एक ही हों यह जरूरी नहीं है। वस्तु का घूर्णन अपने साथ चुंबकीय बल रेखाओं को भी घसीट लेता है यानी चुंबकीय ध्रुव भी वस्तु के साथ घूमेंगे।

न्यूट्रान तारे का कवच यानी न्यूट्रान तारे का वायुमंडल एक या दो सेन्टीमीटर मोटी गैस की परत होता है। यह गैस आयनित (ionised) होती है, यानी इलेक्ट्रान और परमाणु नाभिक बंधे नहीं होते। न्यूट्रान तारा स्वयं एक घूर्णन करने वाले चुंबक के समान है और एक घूर्णन करने वाला चुंबक बिजली धारा पैदा कर सकता है। इसी घूर्णन करते चुंबकीय क्षेत्र से उत्पन्न बिजली द्वारा इलेक्ट्रान (ऋण आवेशित) और परमाणु नाभिक (धन
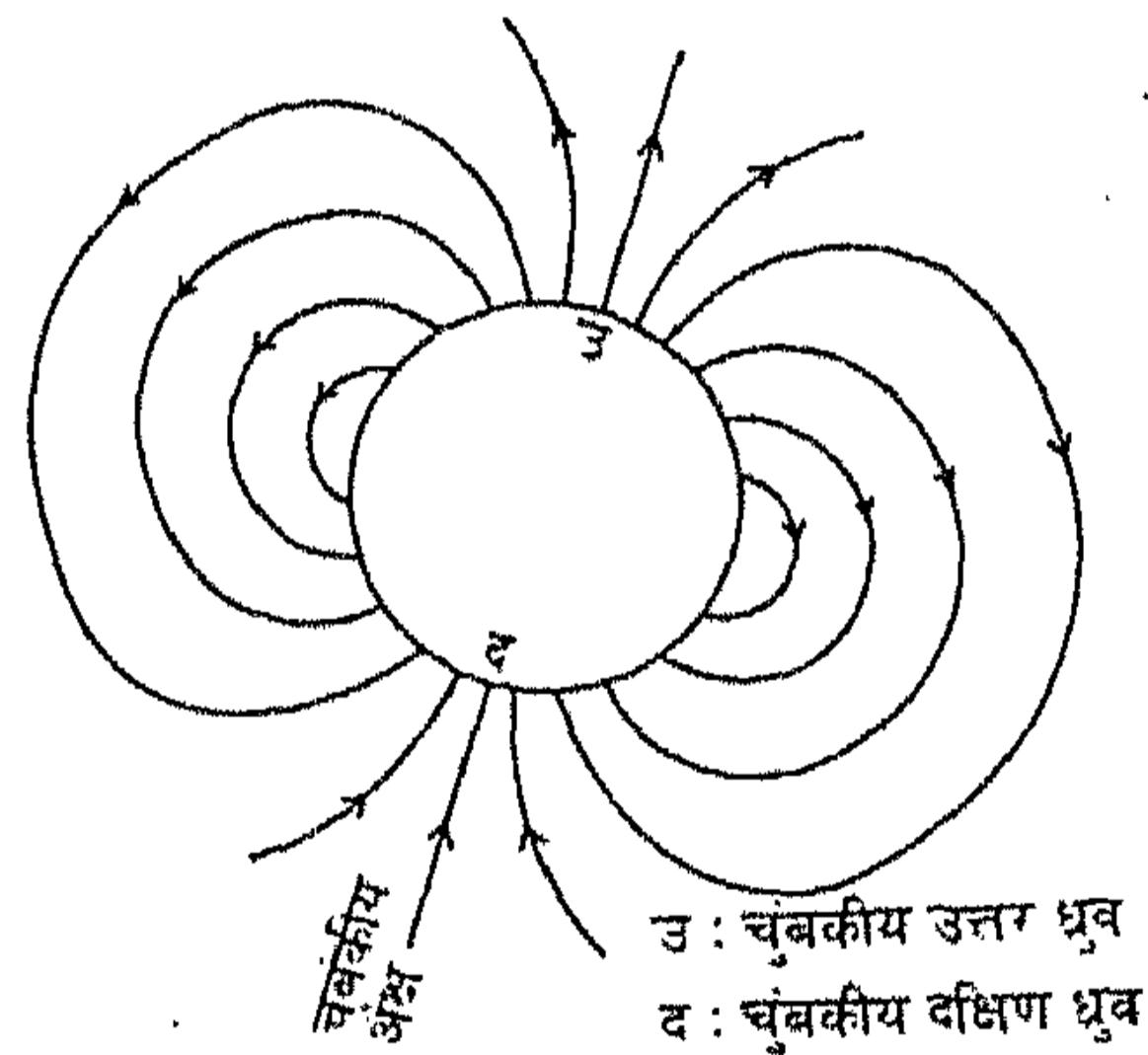
चित्र 38. **तारों का चुम्बकीय क्षेत्र**

आवेशित) न्यूट्रान तारे के वायुमंडल में एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। इलेक्ट्रान एक दूसरे को प्रतिकर्षित करते हैं और यह प्रतिकर्षण तारे के गुरुत्व आकर्षण पर तब विजय पा सकता है जब वायुमंडल में पर्याप्त ऋण आवेश एकत्रित हो जाए। ऐसी स्थिति में इलेक्ट्रान, तारे की सतह को छोड़ते जायेंगे किन्तु धनात्मक आवेश वाले नाभिकों में सतह छोड़ने की प्रवृत्ति बहुत ही कम होगी क्योंकि वे भारी हैं और उन पर गुरुत्व बल अधिक है।

जैसा कि हम जानते हैं कि चुम्बकीय क्षेत्र में घूमता हुआ आवेशित कण, बल रेखा का घूर्णन करता है इसलिए बाहर जाते हुए इलेक्ट्रान, कुंडलिनी (helical) जैसा पथ बनायेंगे (चित्र 39)।

आवेशित कण जैसे-जैसे घूमते जाते हैं वैसे-वैसे ऊर्जा का भी विकिरण करते जाते हैं और इनके विकिरण की आवृति (Frequency) वही होती है जो घूर्णन की होती है। अब उन इलेक्ट्रानों के विषय में सोचिए जो चुंबकीय ध्रुव के निकट बाहर की दिशा में जा रहे हैं। तारे के घूर्णन के कारण चुंबकीय अक्ष तथा उसे घेरे इलेक्ट्रान के बादल दोनों ही भ्रमित होते हैं। अतः इन इलेक्ट्रानों की गति प्रकाश की गति के समीप पहुँच जाती है। आइन्सटाइन के रिलेटिविटी सिद्धांत के अनुसार जब ऐसी स्थिति आती है कि चुंबकीय क्षेत्र में विकिरण करते इलेक्ट्रान की गति प्रकाश की गति के बराबर हो जाती है
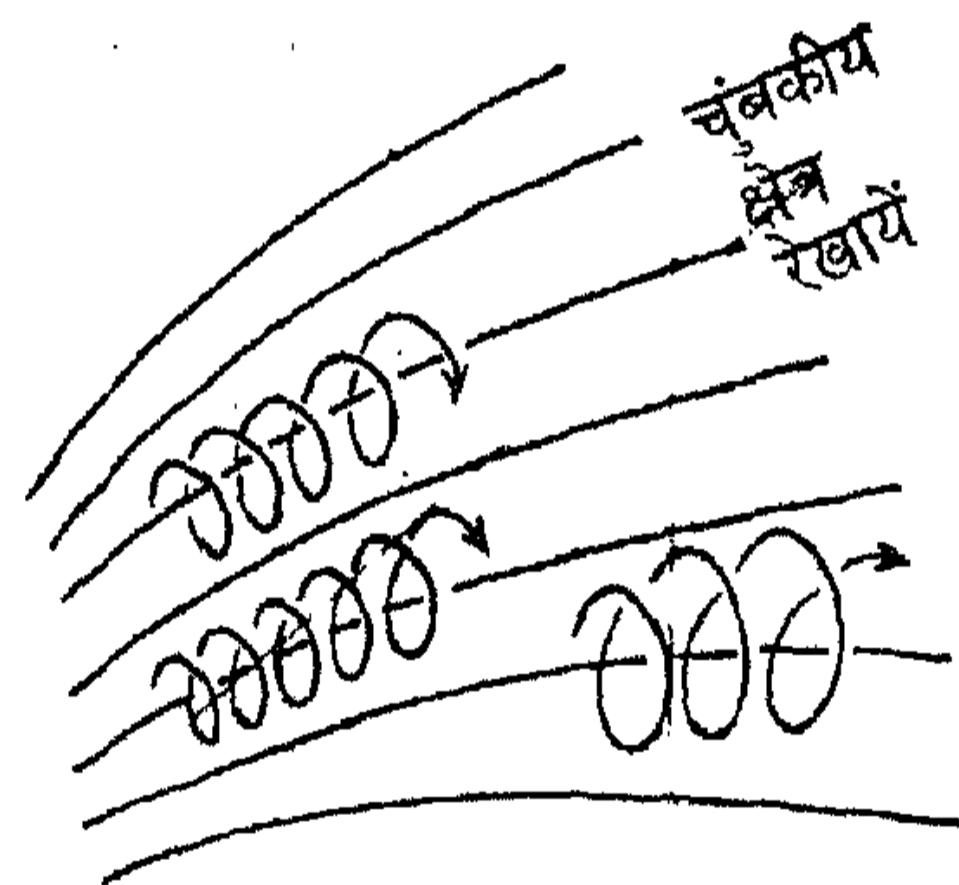
चित्र 39. **चुम्बकीय क्षेत्र में आवेशित कणों की गति**

तब चुंबकीय क्षेत्र में घूमते हुए इलेक्ट्रान में से विकिरण प्रमुख रूप से आगे की तरफ से निकलता है। इन विकिरणों को सिंक्रोट्रान विकिरण (Synchrotron radiation) कहते हैं। इसलिए इलेक्ट्रान बादलों में से विकिरण पुंज बाहर की ओर दोनों ध्रुवों से होकर निकलता है। यह चित्र 40 में दिखाया गया है।
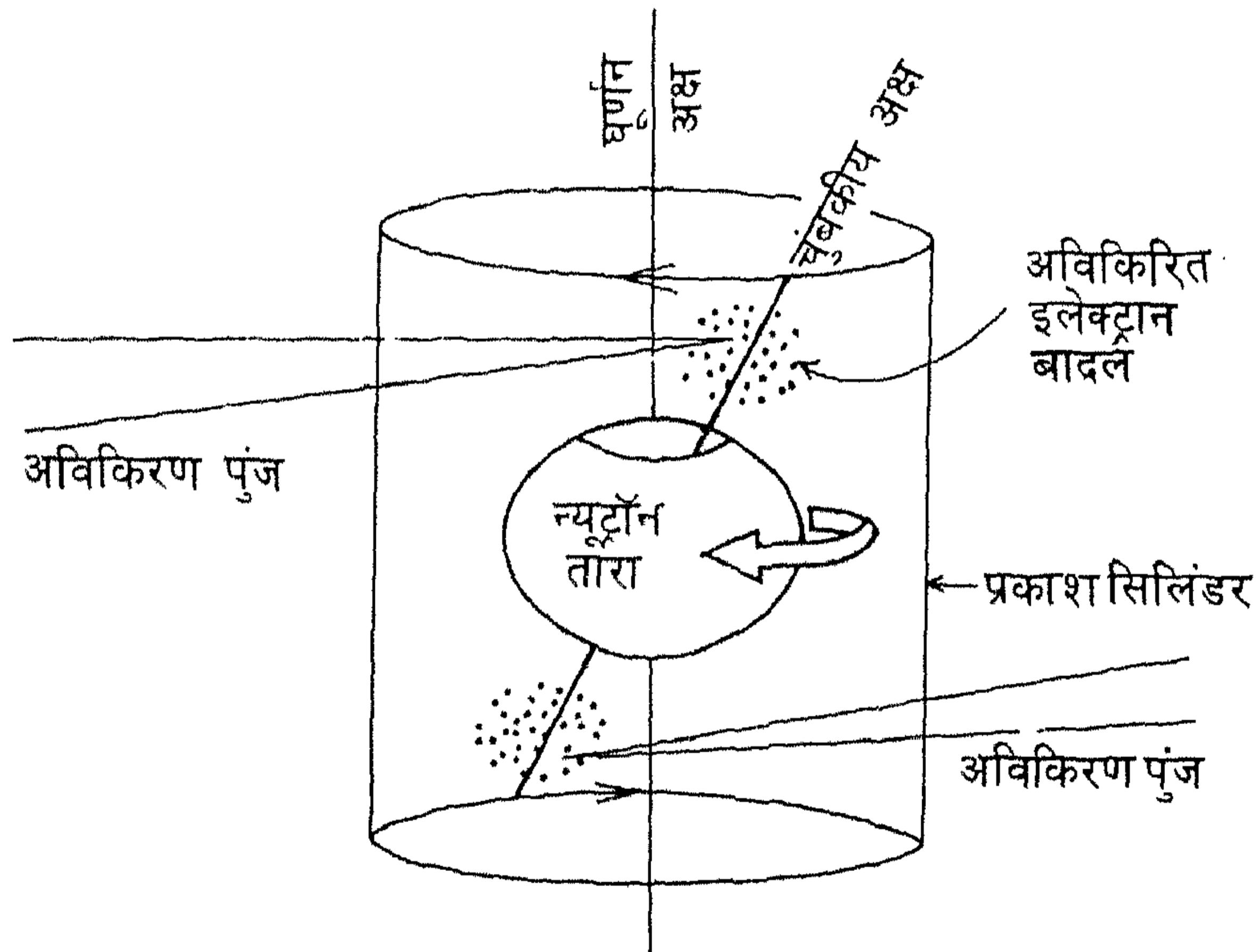
चित्र 40. **पलसार की संरचना**

इस चित्र को समझने के लिए यह भी जान लेना जरूरी होगा कि इलेक्ट्रान बादल और चुंबकीय बल रेखा साथ-साथ गतिमान होते हैं। यह आयनित गैस (Plasma), जो चुंबकीय क्षेत्र के पारस्परिक क्रिया में है, का अभिलक्षणिक (Characteristic) गुण है। ऐसा प्रतीत होता है कि चुंबकीय क्षेत्र रेखाएं प्लाज्मा में डूबी हुई हैं और दोनों रेखाओं एवं प्लाज्मा, की गति एक ही है। यह कल्पना की जा सकती है कि न्यूट्रान तारा, उसके आस पास का चुंबकीय क्षेत्र और इसको घेरे इलेक्ट्रान बादल सब एक साथ मिलकर एक दृढ़ वस्तु के समान घूर्णन कर रहे हैं। घूर्णन अक्ष से दूर होने पर यह दृढ़ता नहीं रहेगी क्योंकि रिलेटिविटी सिद्धांत के अनुसार कोई भी कण प्रकाश की गति से ज्यादा तेज नहीं चल सकता। न्यूट्रान तारे के चारों ओर एक 'प्रकाश सिलिंडर' की कल्पना की जा सकती है। यह एक काल्पनिक सतह है जिसे यदि तारे के घूर्णन के साथ रहना है तो प्रकाश की गति से घूमना पड़ेगा। प्रकाश सिलिंडर की सतह के पास पहुंचते ही इलेक्ट्रानों की गति प्रकाश की गति के लगभग बराबर हो जाती है और वे सिंक्रोट्रान विकिरण का उत्सर्जन करते हैं।

ये किरण पुंज (Light beams) लाइट हाउस के किरण पुंज की तरह चारों ओर प्रसर्प (Sweep) करते हैं। यदि अपने घूर्णन में ये पुंज पृथ्वी को प्रसर्प करें तब हम विकिरण के स्पंद को देख पायेंगे। हम केवल उन्हीं पलसार को देख पायेंगे जिनका पुंज पृथ्वी को प्रसर्प करेगा। यदि ऐसा नहीं होगा तो हम उन्हें नहीं देख पायेंगे। इसलिए अनेकों पलसार हमारे लिए अदृश्य रहेंगे।

पलसार के विकिरण से जो ऊर्जा दूर बहती है उससे न्यूट्रान तारे के घूर्णन में रुकावट (Braking effect) उत्पन्न होती है। इस कारण दो स्पंदों

के बीच के समय में वृद्धि होगी। ऐसा सचमुच पाया भी जाता है। अगर किसी पलसार को कई वर्षों तक देखा जाये तो उसकी स्पंदन गति को मंद होते पाया जायेगा। यह प्रभाव काफी छोटा होता है लेकिन अगर हमारे विचारों के अनुसार ही ऊर्जा उत्पन्न होती है तो गति उतनी ही मंद होती है जितना हम प्रागुक्त करते हैं। क्रैब नेबुला के पलसार के दो स्पंद के बीच का समय (0.03 सेकंड) हर रोज 36 नैनो सेकंड (36×10^{-9} सेकंड) से बढ़ जाता है।

कभी-कभी स्पंदों का यह समय अचानक बदल जाता है। यह परिघटना तारा कंपन के कारण होती है। इसका एक सरल कारण इस प्रकार दिया जा सकता है। एक तेज घूर्णन करने वाला तारा गोल पिंड नहीं है बल्कि यह एक गोलाभ है (ध्रुव पर दबा हुआ और इक्वेटर पर निकला हुआ)। यदि किसी कारण इसका घूर्णन मंद हो जाए तब इसकी आकृति बदलकर और गोल हो जायेगी। जैसे-जैसे न्यूट्रान तारे का घूर्णन मंद होता जाता है वैसे-वैसे इसकी आकृति भी बदलती जानी चाहिए पर ऐसा नहीं होता है। घूर्णन के मंद होने पर न्यूट्रान तारा अपना आकार धीरे-धीरे इसलिए नहीं बदल पाता है क्योंकि वह एक दृढ़ पटल में जकड़ा हुआ है। इसलिए पटल पर दबाव बढ़ता जाता है और यह तब तक बढ़ता जाता है जब तक पटल फट नहीं जाता। फटने पर अचानक आकार में परिवर्तन के साथ ही अचानक घूर्णन समय में भी परिवर्तन होता है।

अब तक सैकड़ों पलसार मिल चुके हैं। सबसे छोटे स्पंदन का समय 0.0015 सेकंड है। इससे पता चलता है कि यह पलसार बहुत ही तेजी से घूर्णन कर रहा है। कोई पलसार इससे ज्यादा गति से घूर्णन नहीं कर सकता क्योंकि घूर्णन करते तारे की इक्वेटर (Equator) पर गति, प्रकाश की गति से कम ही रहेगी।

17

ब्लैक होल

पहले हमने बताया है कि यदि निपात होते हुए तारे के क्रोड का द्रव्यमान इतना अधिक है कि वह न्यूट्रान तारा नहीं बन सकता है तो इस तारे का अंत ब्लैक होल (Black hole) में होगा।

ब्लैक होल बनने की संभावना पहली बार गणितज्ञ लाप्लास ने 1798 में बताई थी। लाप्लास का तर्क समझने के लिए पहले यह जानना होगा कि पलायन वेग (Escape velocity) किसी ग्रह या तारे के लिये क्या अर्थ रखता है। यदि किसी वस्तु को हम पृथ्वी की सतह से ऊपर फेकें तो वह फिर वापस पृथ्वी पर आकर गिरती है। लेकिन यदि उसको 11 किलोमीटर प्रति सेकंड की रफ्तार से अधिक रफ्तार से ऊपर फेकें तब वह वापस नहीं आयेगी।

वह पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से मुक्त होकर अंतरिक्ष की ओर ऊपर बढ़ती जायेगी। यह सीमांत वेग, पलायन वेग है और अंतरिक्ष में जाने वाले किसी राकेट की सबसे कम गति यही होनी चाहिए। इससे कम गति होने पर

राकेट पृथ्वी पर वापस लौट आएगा। किसी ग्रह या तारे (जिसका द्रव्यमान M है और त्रिज्या R) के लिए पलायन वेग (v) निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

$$v = \sqrt{\frac{2GM}{R}}$$

यहाँ, G न्यूटन का गुरुत्व स्थिरांक है (अध्याय 4 देखें)। लाप्लास ने यह बताया कि यदि किसी तारे का द्रव्यमान और त्रिज्या का अनुपात बहुत अधिक हो तब पलायन वेग प्रकाश की गति से भी अधिक हो सकता है इस अवस्था में तारे से कोई प्रकाश बाहर विकिरण नहीं होगा क्योंकि गुरुत्व बल के कारण प्रकाश, तारे की सतह को छोड़ नहीं सकेगा। यह उस समय होता है जब $\frac{M}{R} > \frac{c^2}{2G}$, जहां c प्रकाश की गति है।

वह तारा जो विकिरण नहीं भेज सकता क्योंकि उसके विकिरण उसके गुरुत्व बल से तारे पर बंध गये हैं उसे ''ब्लैक होल'' कहते हैं। सूर्य के द्रव्यमान के बराबर द्रव्यमान वाला तारा ब्लैक होल बन सकता है अगर उसकी त्रिज्या एक किलोमीटर से कम हो। कुछ समय पहले तक यह सोचा जाता था कि शायद ब्लैक होल बन ही नहीं सकते। लेकिन हम यह जानते हैं कि न्यूट्रान तारे के द्रव्यमान की ऊपरी सीमा सूर्य के द्रव्यमान की 2 से 2.5 गुना है, इसलिए किसी भी निपात होते हुए तारे जिसका द्रव्यमान इससे अधिक है, का निपात होता रहेगा और अन्त में वह ब्लैक होल बन जायेगा।

ब्लैक होल को पूरी तरह समझने के लिए लाप्लास के विचारों से भी

आगे के विचार जानना जरूरी है। इसके अलावा यह जानने के लिए कि क्रोड के गुरुत्व निपात से ब्लैक होल कैसे बनता है हमें न्यूटन के गुरुत्व सिद्धांत को छोड़ना होगा। इसमें कई त्रुटियां हैं। इसके लिए हमें आइन्स्टाइन के गुरुत्व सिद्धांत (जिसे जनरल रिलेटिविटी सिद्धांत कहते हैं, 1916) का प्रयोग करना होगा। साधारण स्थिति में न्यूटन और आइन्स्टाइन के सिद्धांतों में फर्क पाना कठिन है लेकिन तीन ऐसे जांच हैं जिनसे पता चलता है कि आइन्स्टाइन का सिद्धांत ठीक है।

1. न्यूटन के सिद्धांत के अनुसार ग्रह, सूर्य की परिक्रमा इक्लिप्स बनाते हुए करता है। किसी ग्रह का सूर्य के अधिक से अधिक समीप होने की स्थिति को उसका पेरिहिलियन (Perihelion) कहते हैं। आइन्स्टाइन के सिद्धांत के अनुसार पेरिहिलियन सदा एक ही जगह नहीं रहता बल्कि इसका स्थान धीरे-धीरे सूर्य के चारों ओर बदलता रहता है। इसे पेरिहिलियन पुरस्सरण (Perihelion precession) कहते हैं। साफ ज़ाहिर है कि ग्रहों की कक्षा का पेरिहिलियन पुरस्सरण दूसरे ग्रहों के गुरुत्व प्रभाव से होता है। बुध के पेरिहिलियन पुरस्सरण में जो लम्बे समय से त्रुटि चली आ रही थी वह आइन्स्टाइन के सिद्धांत द्वारा पूरी तरह दूर हो गयी।

2. आइन्सटाइन का सिद्धांत यह प्रागुक्त करता है कि जब प्रकाश की किरणें किसी भारी द्रव्यमान वाले पिंड के पास से गुजरेंगी तब वे मुड़ जायेंगी। उदाहरण के लिए वे तारे जो पूर्ण-सूर्यग्रहण के समय सूर्य डिस्क के पास दिखते हैं, वे अपने सामान्य स्थान से थोड़ा हटकर दिखते हैं। इसे 1919 के सूर्य ग्रहण में देखकर आइन्सटाइन सिद्धांत की पुष्टि हुई।

3. तीसरा यह कि प्रकाश के तरंग दैर्ध्य पर गुरुत्व क्षेत्र का प्रभाव पड़ता है। पृथ्वी के गुरुत्व क्षेत्र में यह प्रभाव बहुत ही कम है लेकिन इसका माप

किया जा सकता है। ऊपर जाते हुए प्रकाश को पृथ्वी के गुरुत्व बल के खिचाव के विरुद्ध कार्य करना पड़ता है जिसके फलस्वरूप इसकी तरंग दैर्ध्य का विस्थापन लाल की ओर हो जाता है। इसी तरह नीचे जाते हुए प्रकाश का विस्थापन नीले की तरफ होता है। नापने से यह पाया गया कि यह विस्थापन, आइन्स्टाइन के सिद्धांत द्वारा प्रागुक्त मान के बराबर होता है। इसी तरह प्रकाश जब किसी तारे के गुरुत्व खिंचाव के विपरीत बाहर निकलता है तो उसकी तरंग लम्बाई बढ़ जाती है इसलिए तारे के अवशोषण स्पेक्ट्रम की रेखाओं में भी विस्थापन होता है। इसे गुरुत्व लाल विस्थापन (Gravitational red shift) कहते हैं। सामान्य तारों के लिए यह प्रभाव डाप्लर शिफ्ट से बहुत कम है। पहले (अध्याय 9 में) बताया जा चुका है कि डाप्लर शिफ्ट तारे की गति से संबंध रखता है। गुरुत्व शिफ्ट के लिए प्रकाश के तरंग लंबाई को नीचे दिए हुए गुणक से गुणा करना होगा।

$$1/(1-\frac{2GM}{c^2R})$$

यह गुणक उन तारों के लिए बड़ा है जिनके लिए M/R बड़ा हैं। जब $\frac{M}{R}=\frac{c^2}{2G}$ हो तब यह गुणक अनंत हो जाता है। जब किसी तारे के लिए $\frac{M}{R}>\frac{c^2}{2G}$ हो तब वहां से प्रकाश बाहर नहीं निकल सकता। ऐसा तारा ब्लैक होल बन जाता है। आइन्स्टाइन की यह प्रागुक्ति बिलकुल वही है

जिसे लाप्लास ने अपने विचारों को न्यूटनी सिद्धांत (Newtonian theory) पर आधारित करके निकाला था।

आइये, अब हम उस तारे के क्रोड के गुरुत्व निपात के विषय में सोचें जिसका द्रव्यमान इतना अधिक है कि वह न्यूट्रान तारा बन नहीं सकता। इस तारे के क्रोड का निपात होता जाएगा जब तक इसकी त्रिज्या $\frac{2GM}{c^2}$ के बराबर नहीं हो जाएगी। इसके बाद इस पिंड से कोई प्रकाश, विकिरण या कण बाहर निकल नहीं सकेगा। अब यह बिलकुल अदृश्य हो जायेगा और इसका पता अब सिर्फ इसके गुरुत्व क्षेत्र के प्रभाव से ही चल सकता है। यह तारा अब एक गोले के अंदर है जिसकी त्रिज्या $\frac{2GM}{c^2}$ के बराबर है और इस गोले से अब कुछ भी बाहर नहीं निकल सकता। इस गोले की सतह को स्वार्जसाइल्ड सतह (Schwarzschild surface) या घटना क्षितिज (Event horizon) कहते हैं। इस सतह के अन्दर जो कुछ भी गिरता है वह फिर वापस नहीं आ सकता तथा सदा के लिए वह ज्ञात विश्व से लुप्त हो जाता है।

हम अभी तक जिसका वर्णन कर रहे हैं वह स्वार्जसाइल्ड ब्लैक होल के सम्बन्ध में है और यह होल उस तारे के निपात से बनता है जो घूर्णन नहीं करता। साधारणतया तारे घूर्णन करते हैं और उनकी घूर्णन गति निपात के साथ बढ़ती है। घूर्णन करने वाले ब्लैक होल की बनावट जटिल है तथा इसका घटना-क्षितिज भी गोलाभ (Spheroid) है। घूर्णन करते हुए ब्लैक होल को ''केर ब्लैक होल'' (Kerr Black hole) कहते हैं।

10-15 गुना है तब अदृश्य तारे का द्रव्यमान सूर्य से 5 गुना से भी अधिक हो सकता है। तब शायद यह ब्लैक होल हो लेकिन निश्चित रूप से यह फिर भी नहीं कहा जा सकता है।

□□

भाग – तीन

आकाश गंगाएँ
और
ब्रह्मांड विज्ञान

18

आकाश गंगा

यदि हम नगर के बाहर (बिजली की रोशनी से दूर और जिस दिन चन्द्रमा नहीं दिखाई दे) स्वच्छ रात्रि में तारों भरे आकाश को देखें, तो प्रकाश की एक धुंधली पट्टी दिखाई देगी। इसे आकाश गंगा (Milky way) कहते हैं। यदि दूरबीन से देखा जाए तो करोड़ों तारे जो बहुत दूर और धीमे हैं दिखाई देंगे।

आकाश में तारे यादृच्छिक (Random) रूप में नहीं बिखरे हैं। दूरबीन से देखने पर एक प्रतिरूप नजर आता है। अधिक दूरी पर तारों का घनत्व कम हो जाता है। 1750 में थामस राइट ने सुझाव दिया कि तारे दो समानांतर तलों के बीच बिखरे हैं। इसलिए यदि हम इस तल की समानांतर दिशा में देखें तो तारे दूरी के बढ़ने के साथ एक दूसरे में विलय होते दिखाई देंगे और हमें अन्ततः एक दूधिया कुहासा दिखाई देगा।

तारों के संग्रह का आधुनिक चित्र एक लैंस (जिसमें बीच में उभार है)के जैसा है। इसका एक अनुप्रस्थ काट (cross-section) चित्र 41 में दिखाया गया है।
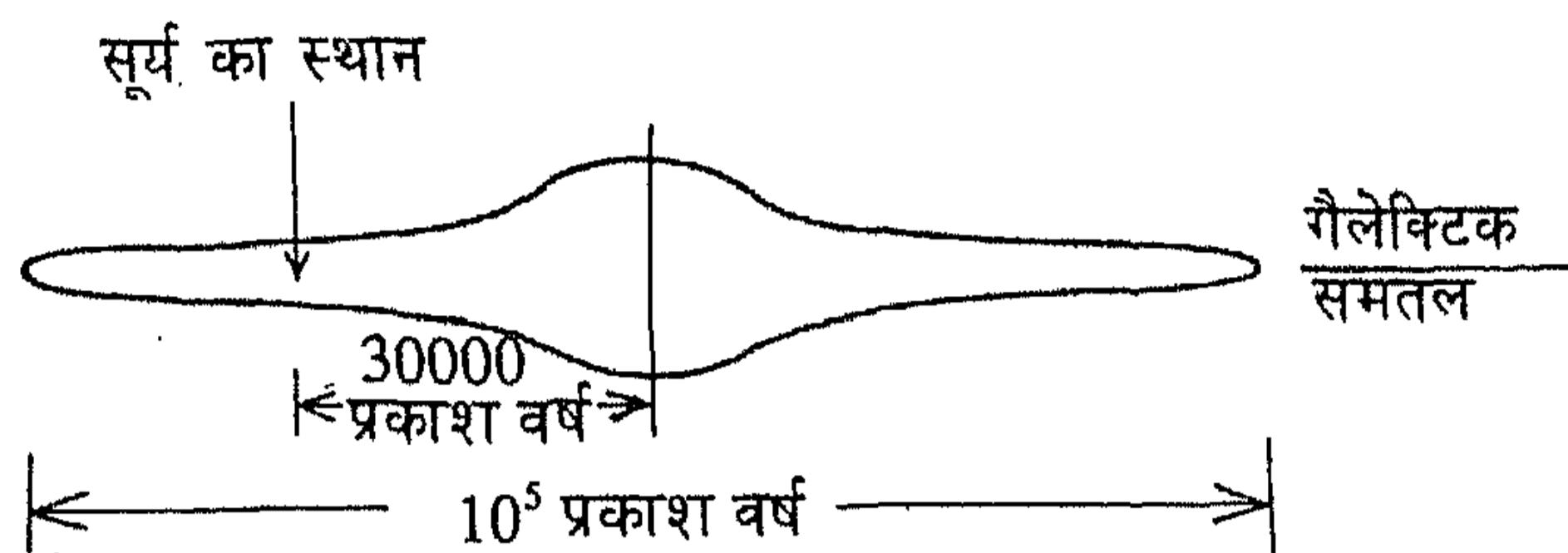
चित्र 41. **आकाश गंगा**

तारों का ऐसा संग्रह आकाश गंगा कहलाता है। इसमें 10^{11} (लगभग दस हजार करोड़) तारे हैं। इसका व्यास करीब 100,000 प्रकाश वर्ष है। हमारी आकाश गंगा का केन्द्र, तारा मण्डल सेगीटेरियस की ओर है जो इस आकाश गंगा का प्रमुख क्षेत्र है।

1917 में हारलो शेपले ने सूर्य से आकाश गंगा के केन्द्र तक की दूरी का अनुमान लगाया। इसके लिए उन्होंने गोलिका गुच्छों (Globular clusters) को ठीक से जांचा। गोलिका गुच्छ एक पफ के गेंद जैसा है जिसमें 100,000 तारे गुरुत्व आकर्षण से बंधे हैं। (चित्र-42)।

ये गुच्छे हमसे काफी दूर हैं और ज्यादातर गुच्छे मंदाकनीय समतल (Galactic plane) से दूर अलग-अलग दिशाओं में दिखायी देते हैं। इसलिए वे चित्र 41 में प्रदर्शित संग्रह के बाहर हैं। जैसा
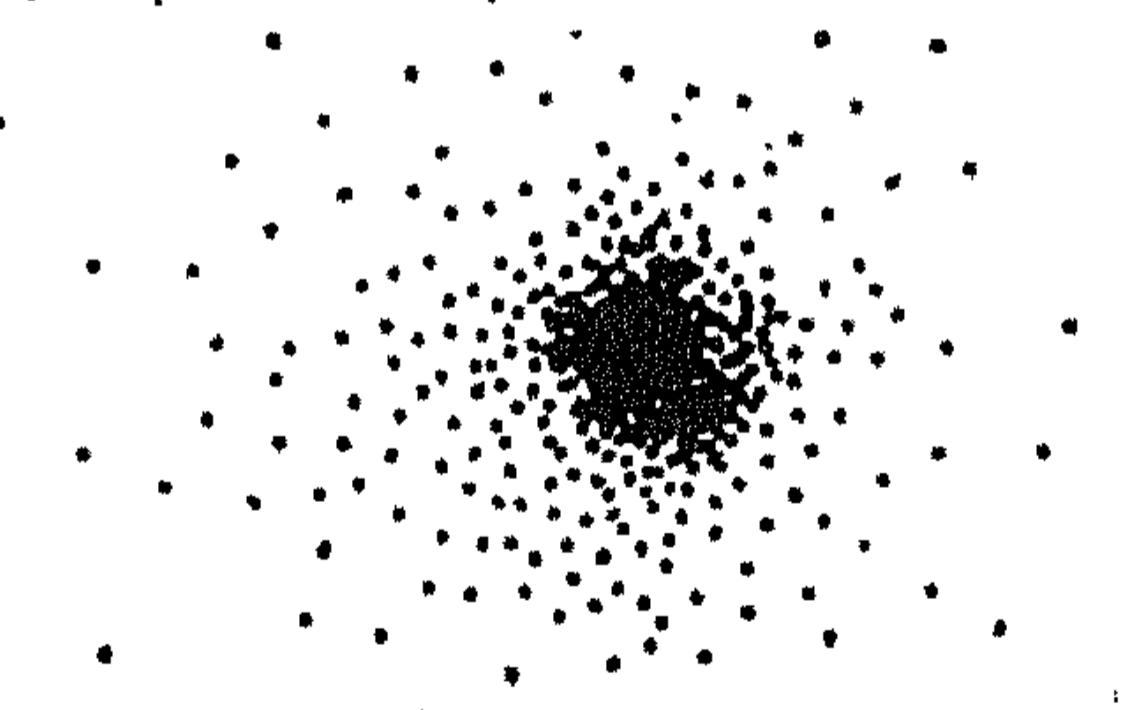
चित्र 42. **गोलिका गुच्छ का प्रगरण**

कि चित्र 43 में दिखाया गया है वे आकाश गंगा के चारों ओर बिखरे हैं।

शैप्ले ने आकाश में बिखरे विभिन्न गोलिका गुच्छों का केन्द्र जानना चाहा। इसके लिए उन गुच्छों की दूरियां जानना जरूरी था, इसलिए उनकी दूरियां जानने के लिए उन्होंने उन गुच्छों में मौजूद आर आर लिरे (R R Lyrae) तारों को खोजना शुरू किया। आर आर लिरे तारे परिवर्तनशील तारे (Variable stars) हैं। इनकी ज्योति सूर्य से 100 गुना अधिक है इसलिए इतनी दूरी पर रहते हुए भी इनका पता लगाना संभव है। उनके प्रकाश की तीव्रता बदलती रहती है, जिसका काल एक दिन से कुछ कम है। इसलिए गुच्छों का अलग-अलग समय पर चित्र लेने से और उनको मिलाने से उन तारों को, जिनकी ज्योति में अंतर दिखाई दे, पहचाना जा सकता है। इस प्रकार आर आर लिरे को गुच्छे में पहचानने के बाद उसकी दूरी का भी पता लगाया जा सकता है। इसके लिए उसकी तीव्रता किसी ज्ञात आर आर लिरे की तीव्रता से मिलानी होगी। इस दूरी के आकलन में यह मानकर चलना पड़ता है कि सभी आर आर लिरे तारे समान ज्योति के हैं और अंतरिक्ष की धूल में से गुज़रने पर उनकी रोशनी की तीव्रता में कोई कमी नहीं होती है। किन्तु जब कोई गोलिका गुच्छ बहुत ही दूर हो तब इस विधि

चित्र 43. **आकाश गंगा के चारों ओर गोलिका गुच्छ का झुण्ड**

का प्रयोग नहीं हो सकता है। हां, उसकी दूरी का उसके आभासी व्यास द्वारा आकलन किया जा सकता है लेकिन वह तभी संभव है जब हम यह मानें कि सभी गुच्छे एक ही माप के हैं।

इन विभिन्न गोलिका गुच्छों का स्थान पता लगाने के बाद ही हम झुंड के केन्द्र का निगमन कर सकते हैं। निगमन करने के बाद यह निष्कर्ष निकला कि यह केन्द्र सेगीटेरियस की दिशा में सूर्य से 30,000 प्रकाश वर्ष की दूरी पर है।

□□

19

गैलेक्सी का घूर्णन

आइये अब आकाश गंगा के डिस्क में तारों की होने वाली गति का एक सरल चित्र लेते हैं। मान लीजिए कि तारे गैलेक्टिक केन्द्र के चारों और वृत्ताकार कक्षा में घूम रहे हैं। (चित्र 44)

आकाश गंगा का अधिकतम द्रव्यमान केन्द्रीय उभार में रहता है इसलिए तारे इस केन्द्रीय उभार के चारों ओर उसी प्रकार घूमते हैं जैसे सूर्य के चारों तरफ ग्रह। अतः जो तारे केन्द्र से बहुत दूर हैं वे धीमी गति से घूमते हैं और जो केन्द्र के निकट हैं वे तेजी से। चित्र 44 में स्थान 'ऐ' पर दिखाया गया तारा, सूर्य की तुलना में धीमी गति से घूम रहा है। सूर्य इसको पीछे छोड़ रहा है इसलिए पृथ्वी से देखने पर यह पश्चगामी प्रतीत होगा। दूसरी ओर सूर्य, तारा 'बी' की ओर बढ़ रहा है इसलिए पृथ्वी से देखने पर तारा 'बी' हमारी तरफ बढ़ता हुआ दिखाई देगा। इसलिए इसका स्पेक्ट्रम नीले की

ओर स्थानांतरित होगा। इसी तरह तारा 'डी' सूर्य की ओर बढ़ रहा है, इसलिए इसका स्पेक्ट्रम नीले की ओर स्थानांतरित होगा और तारा 'सी' सूर्य से दूर जा रहा है इसलिए इसका स्पेक्ट्रम लाल की ओर स्थानांतरित होगा। अतः यह स्पष्ट है कि सूर्य के आसपास के तारों के डाप्लर शिफ्ट के अध्ययन से हम लोग आकाश गंगा के घूर्णन के विषय में जान सकते हैं।

चित्र 44. गैलेक्टिक केन्द्र के चारों ओर का घूर्णन

लेकिन यह मॉडल जिसमें तारे गैलेक्टिक डिस्क में वृत्ताकार कक्षा में घूमते हैं वास्तविक नहीं है, इसलिए जब हम बड़ी संख्या में तारों के डाप्लर शिफ्ट का अध्ययन कहते हैं तब स्पेक्ट्रा के लाल और नीले की ओर स्थानांतरित होने की बात तथा वे तारे की दिशा पर किस प्रकार निर्भर हैं, के विषय में हमारे निष्कर्ष केवल औसत में ठीक हैं।

डाप्लर शिफ्ट से हम लोगों को तारों की गति (पश्चगति या तारों की हमारे निकट आने की गति) के विषय में जानकारी मिलती है। इसके अलावा इससे हम नज़दीक के तारों की उचित गति भी जान सकते हैं। आकाश के किसी क्षेत्र के कई वर्षों की अवधि पर लिये गये चित्रों को एक दूसरे से मिलाने पर पता चलता है कि पास का तारा, दूर के तारों की पृष्ठभूमि में कितना घूम गया है। इस जांच से साफ पता चलता है कि घूर्णन का केन्द्र सेगीटेरियस तारामंडल की तरफ है और यह सूर्य से 30,000 प्रकाश वर्ष की दूरी पर है।

इससे यह भी पता चलता है कि सूर्य और सूर्यमंडल इस घूर्णन केंद्र के चारों ओर 20 करोड़ वर्ष में एक चक्कर पूरा करते हैं।

सूर्य के निकट के तारों में वे तारे जो गैलेक्टिक केंद्र से दूर हैं औसतन धीरे चलते हैं और वे तारे जो गैलेक्टिक केन्द्र के निकट हैं औसतन तेज चलते हैं। यही आशा भी की जाती है क्योंकि अधिकतम द्रव्यमान केन्द्र के पास होता है। घूर्णन की गति, केन्द्र से बाहर की ओर बढ़ने पर किस प्रकार बदलती है यह चित्र 45 में दिखाया गया है।
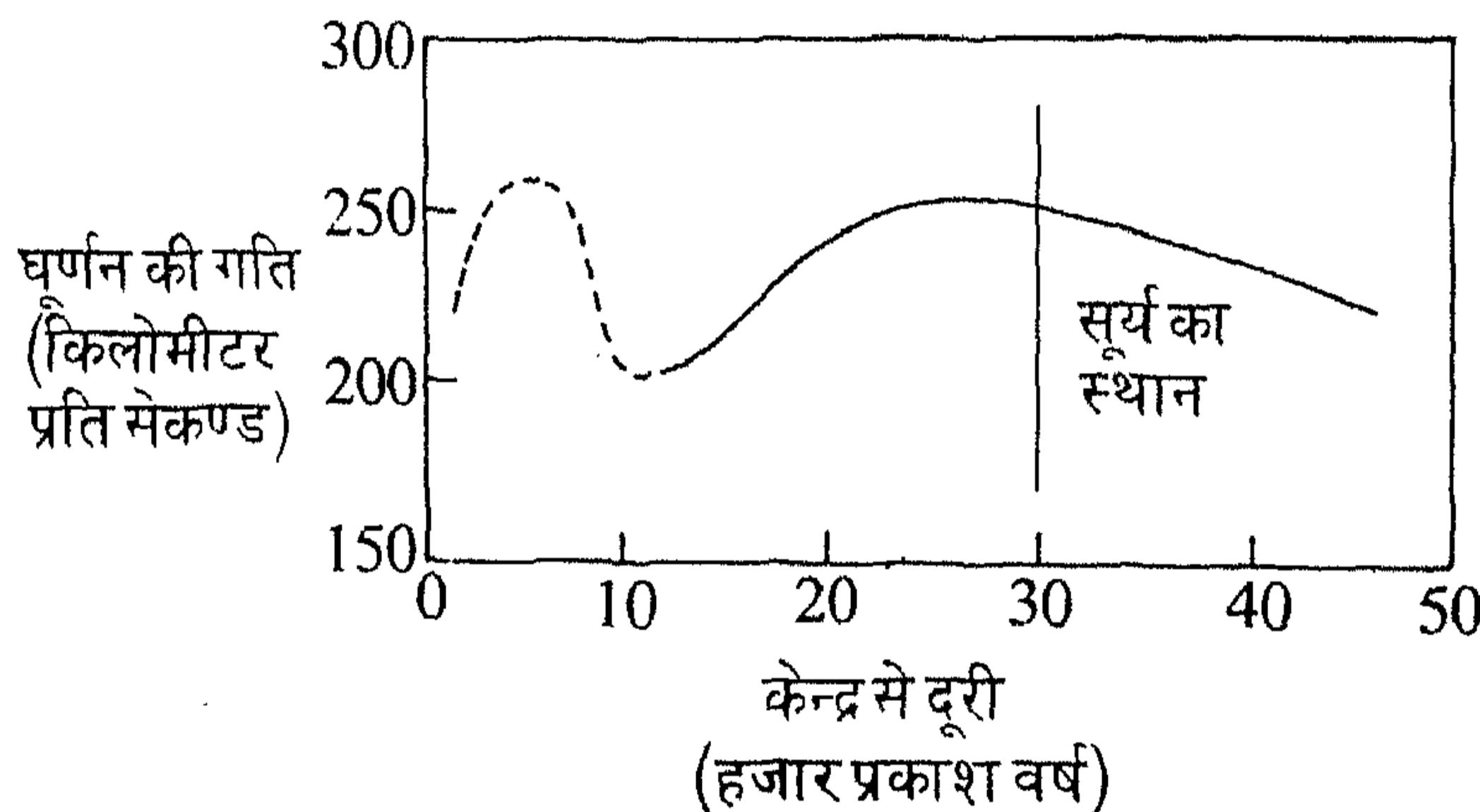
चित्र 45. आकाश गंगा का घूर्णन वक्र

इस चित्र को घूर्णन वक्र (Rotation curve) कहते हैं। इससे यह पता चलता है कि आकाश गंगा का द्रव्यमान किस प्रकार बिखरा है। नोट कीजिए कि किस प्रकार तारे की गति गैलेक्टिक डिस्क के बाहर की ओर जाने पर

धीरे-धीरे कम होती जाती है। यदि सारा द्रव्यमान केन्द्रीय क्षेत्र में ही संकेन्द्रित हो, तब बाहरी भाग के घूर्णन की गति तेजी से गिर जायेगी, यह हम केप्लर के तीसरे नियम से जानते हैं। लेकिन गति में धीमा पतन होता है और यह तभी संभव है जब हमारे अनुमान से अधिक द्रव्यमान केन्द्र से दूर हो। इसलिए वक्र आकार से पता चलता है कि गोलिका गुच्छों का एक बड़ा प्रभामंडल (Halo) है (चित्र 43) जिसमें अदृश्य पदार्थ के अलावा गुच्छे भी हैं। गैलेक्सी के चारों ओर इन प्रभामंडलों का होना ब्रह्मांड में लुप्त द्रव्यमान के प्रश्न (अध्याय 24 देखिये) से संबंध रखता है। कई समीप के आकाश गंगाओं का घूर्णन वक्र, डाप्लर शिफ्ट देखकर तैयार किया गया है जिनसे यह पता चलता है कि ये वक्र किस प्रकार बदलते हैं।

□□

20

आकाश गंगाओं की दूरी

आकाश गंगा (Milky way) के विषय में जिसका सदस्य हमारा सूर्य मंडल भी है, पिछले अध्याय में वर्णन किया गया है। ब्रह्मांड में ऐसी अनेकों आकाश गंगाएं हैं जिनको परागांगेय निहारिका (नेबुली) (Extragalactic Nebulas) कहते हैं। लैटिन में नेबुली का अर्थ बादल होता है, इसलिए इस शब्द का अर्थ है ''आकाश गंगा के बाहर वाले बादल'' और यह दूरबीन से एक धुंधला क्षेत्र दिखता है। ये इतनी दूर हैं कि इनमें अलग-अलग तारे नहीं दिखाई देते। केवल समीप वाली आकाश गंगा में हम यह देख सकते हैं कि धुंधले क्षेत्र में तारे हैं।

समीप के आकाश गंगाओं की दूरी उनमें विद्यमान सीफाइड परिवर्ती (Cepheid Variables) तारों को देखने से आँकी जा सकती है। सीफाइड परिवर्ती एक विशेष प्रकार का तारा है जिसकी ज्योति एक खास प्रकार से बदलती है। इस तारे का नाम तारा मंडल सेफिअस (Cepheus) में इस

प्रकार का पहला तारा, डेल्टा-सीफाई (Delta Cephei) के नाम पर रखा गया। इन तारों की ज्योति तेजी से उच्चतम मान पर पहुँच जाती है और फिर धीरे-धीरे निम्नतम मान पर पहुँचती है। यह चक्र समय के साथ चलता रहता है। एक चक्र (एक अधिकतम मान से दूसरे अधिकतम मान तक या फिर एक निम्नतम मान से दूसरे निम्नतम मान तक) पूरा होने की अवधि कुछ दिन है (चित्र 46)।

सीफाइड की एक विशेषता यह है कि उसका स्पंदन काल (Period of Pulsation) और उसकी उच्चतम ज्योति, आपस में संबंधित हैं। इसलिए यदि किसी समीप के सीफाइड की दूरी मालूम हो जाए तब दूर स्थित सीफाइड की दूरी उसके स्पंदन काल मापने से तथा उसकी दृष्ट प्रभा (Apparent brightness) की ज्ञात दूरी वाले सीफाइड की ज्योति से तुलना करने पर ज्ञात हो सकती है।
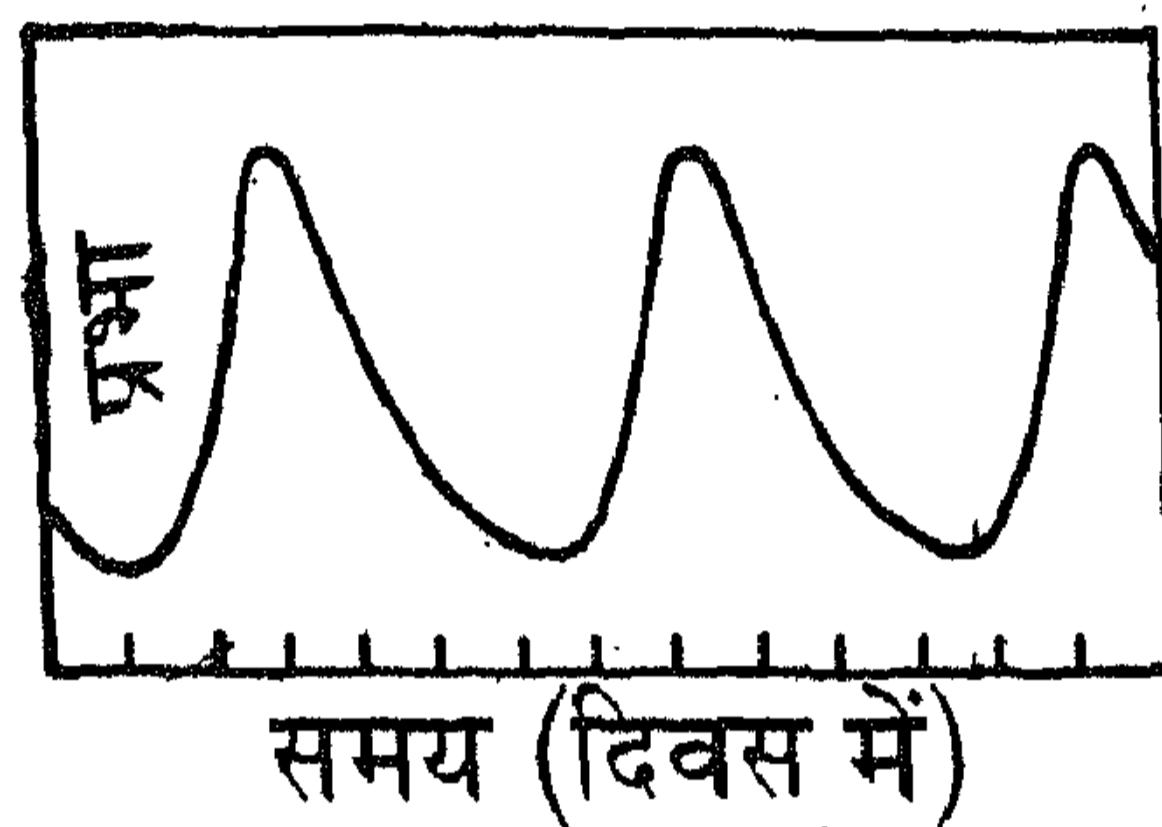
चित्र 46. **डेल्टा सीफाई का ज्योति वक्र**

लेकिन कोई भी सीफाइड इतना समीप नहीं है कि पैरेलेक्स विधि (अध्याय 7) से उसकी दूरी का पता लगाया जा सके। कुछ सीफाइड खुले गुच्छे (open cluster) के भाग होते हैं। यह खुले गुच्छे तारों के संग्रह हैं जो गैलेक्टिक डिस्क में होते हैं लेकिन इनमें गोलिका गुच्छे के मुकाबले कम तारे होते हैं। ये अधिक फैले हुए होते हैं तथा इनका कोई निश्चित आकार नहीं

होता है। हम यह मान सकते हैं कि एक खुले गुच्छे के सभी तारे पृथ्वी से एक ही दूरी पर हैं। किसी एक खुले गुच्छे के तारों के लिए H-R आरेख बनाकर तथा इस आरेख के मुख्य क्रम के तारों की दृष्ट प्रभा की, ज्ञात दूरी वाले तारों की दृष्ट प्रभा से तुलना करने पर, उस खुले गुच्छे के तारों की दूरी ज्ञात की जा सकती है। इस प्रकार खुले गुच्छे में स्थित सीफाइड की दूरी, निर्धारित की जाती है।

सीफाइड बड़े चमकीले तारे हैं इसलिए हमारी आकाश गंगा के अलावा दूसरी आकाश गंगाओं में भी वे देखे जा सकते हैं। इस प्रकार इन आकाश गंगाओं की दूरी का पता लगाया जा सकता है।

हमारी आकाश गंगा के सबसे समीप दो आकाश गंगाए हैं। इन्हें ''मैजैलैनिक बादल'' (Magellanic Clouds) कहते हैं। नग्न आंख से देखने पर ये आकाश गंगा के बड़े टुकड़े जैसे दिखते हैं, लेकिन ये अलग हैं और पृथ्वी के दक्षिण अर्धगोल से दिखाई देते हैं। ये सूर्य से 200,000 प्रकाश वर्ष की दूरी पर हैं और हमारी आकाश गंगा के मुकाबले ये छोटे हैं। सीफाइड की मैजैलैनिक बादल के अन्दर अध्ययन करने पर सीफाइड के काल-ज्योति नियम की खोज हुई। वह आकाश गंगा जो हमारी आकाश गंगा के सबसे समीप है और उससे आकार और विस्तार में मिलती है, ''एन्ड्रोमिडा में बड़ा नेबुला'' है। यह नग्न आंखों से छोटा, धीमा और धूमिल धब्बा दिखाई देता है। दूरबीन से देखने पर और फोटो में यह एक अद्भुत पिंड के रूप में निखर आता है। एन्ड्रोमिडा आकाश गंगा, करीब 20 लाख प्रकाश वर्ष की दूरी पर है।

जब कोई आकाश गंगा इतनी दूर हो, कि उसके सीफाइड तारे दिखाई न दें तब उसकी दूरी का पता लगाने के लिए कुछ कमजोर तरीकों का प्रयोग

करना पड़ता है। उदाहरण के लिए हम ऐसी आकाश गंगा के सबसे चमकीले तारे को देख कर यह मान सकते हैं कि उसकी ज्योति हमारी आकाश गंगा के सबसे चमकीले तारे के बराबर है या फिर हम इसके गोलिका गुच्छे की ज्योति की अपनी आकाश गंगा के गोलिका गुच्छे की ज्योति से तुलना करके देख सकते हैं। इस गैलेक्सी के किसी नोवा (अध्याय 15) की प्रभा, की भी दूरी पता लगाने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। बहुत दूर की आकाश गंगाओं के लिए हम उनकी दृष्ट प्रभा को एक औसत ज्योति मान सकते हैं। इस दूरी को ''ज्योति दूरी'' (Luminosity distance) कहते हैं। आकाश गंगा के स्पेक्ट्रम के लाल शिफ्ट से भी हम दूरी का पता लगा सकते हैं (अध्याय 22)।

पालोमार 200 इंच दूरबीन द्वारा लम्बे उद्भासन काल (Exposure time) के साथ फोटो लेने पर सबसे दूर की आकाश गंगाएं छोटे बिन्दु के रूप में फोटो में दिखाई देती हैं। ये हमसे हजार करोड़ प्रकाश वर्ष की दूरी पर हैं। इस दूरबीन की इस बृहत् परास (Enormous range) के कारण हम लोग इससे हजार करोड़ आकाश गंगाएं देख सकते हैं और प्रत्येक आकाश गंगा में 10 हजार करोड़ तारे होते हैं। फिर भी देखा जाने वाला यह इतना विशाल क्षेत्र ब्रह्मांड का एक छोटा-सा भाग है।

□□

21

आकाश गंगा का आकार

सभी आकाश गंगाएँ एक जैसे नहीं दिखतीं। ये तीन प्रकार की होती हैं– इनका रेखाचित्र 47 में दिखाया गया है।

"इलिप्टिकल आकाश गंगा" (E) चिकनी और बिना किसी विशेष लक्षण के है। इसमें केन्द्र से बाहर की ओर जाने पर तारों का घनत्व कम हो जाता है। अगर तारों का ऐसा एक गोल संग्रह जो गुरुत्व आकर्षण से बंधा हो तथा जिसका निपात उन तारों की गति के कारण संभव न हो, घूर्णन कर रहा हो, ताकि अपकेन्द्री बल के कारण वह चपटा हो जाए तो ऐसे ही आकार (इलिप्टिकल) की आशा भी की जा सकती है।

"सर्पिल आकाश गंगा" (S) डिस्क जैसी है जिसका केन्द्रीय क्षेत्र उठा हुआ है। केन्द्रीय क्षेत्र के बाहर इसकी विचित्र बनावट है जिसमें दो सर्पिल हाथ निकले हैं।

सर्पिल आकाश गंगा को पृथ्वी से देखने पर हमें उसका किनारे का दृश्य देखने को मिलता है जो चित्र 41 जैसा दिखता है। ज्यादातर इनमें एक काली धारी होती है, जो डिस्क के बाहरी क्षेत्र में धूल के कणों से बनती है।
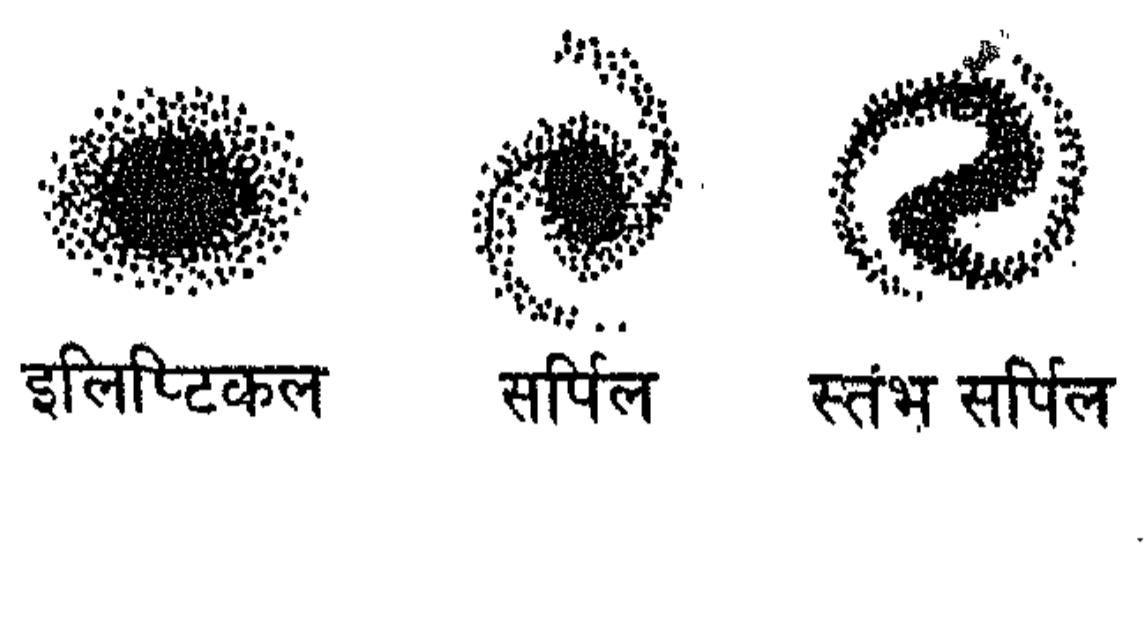
चित्र 47. **तीन प्रकार की आकाश गंगाएं**

यह धारी भीतरी तारों की रोशनी को रोक लेती है। हमारी आकाश गंगा सर्पिल आकाश गंगा है, लेकिन हम इसके अन्दर होने के कारण इसके सर्पिल हाथ आसानी से नहीं देख पाते हैं। 21 सेन्टीमीटर लंबी तरंगदैर्ध्य की विकिरण जो डिस्क के हाइड्रोजन बादल में से निकलती है, को जांचने से हम इन सर्पिल हाथों का पता लगा सकते हैं। सर्पिल आकाश गंगा में बहुत से गर्म, ज्योतिशील प्रकार के ''ए'' और ''बी'' तारे हैं इसलिए फोटो में सर्पिल हाथ अच्छी तरह उभर कर आते हैं। चूंकि ''ए'' और ''बी'' प्रकार के तारों का जीवन कम होता है अतः ये तारे कम उम्र के हैं इससे पता चलता है कि सर्पिल हाथों में कम उम्र के तारे हैं और यहां नये तारों का जन्म होता है।

''स्तंभ सर्पिल'' (SB) आकाश गंगा में दोनों सर्पिल हाथ एक सीधे स्तंभ के दोनों छोर से उद्‌भव होते प्रतीत होते हैं। यह सीधा स्तंभ आकाश गंगा के बीच में से गुज़रता है।

इन तीन प्रकार की आकाश गंगाओं के अतिरिक्त कुछ अनियमित (irregular) आकाश गंगाएँ भी हैं। इनके आकार अनियमित हैं तथा ये कुछ छोटी हैं। इनमें केवल 10^{10} या इससे कम तारे होते हैं। दोनों मैजैलैनिक बादल, जिनके विषय में हमने पहले बताया है, इस प्रकार की आकाश गंगाएँ हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि आकाश गंगा (जैसे हमारी आकाश गंगा)कैसे बनती है? हम सबसे पहले एक विशाल गैस के बादल के विषय में विचार कर सकते हैं जिसका द्रव्यमान 10^{11} सूर्य के द्रव्यमान के बराबर हो। गुरुत्व आकर्षण के कारण इसका निपात होने दें (चित्र 48)। ऐसा होने पर इसका आकार गोल होता जाएगा और इसके केन्द्र का घनत्व बाहरी क्षेत्र के घनत्व से अधिक हो जाएगा। आरंभ में जो भी इसका घूर्णन होगा उससे वह अब और भी बढ़ेगा। किसी चरण में आगे चलकर द्वितीयक संघनन होगा जो अंत में गोलाकार तारे गुच्छ का रूप ले लेगा (चित्र 48 बी)। बादल का संकुचन होता रहेगा और गोलाकार तारा गुच्छों का झुंड चारों ओर से इसे घेर लेगा (चित्र 48 सी)। जैसे-जैसे इस बादल का निपात और होता जायेगा इसकी घूर्णन गति तेज होती जायेगी और इसमें अपकेन्द्री बल के कारण चपटापन भी आ जाएगा जिससे इसमें बहुत से तारे भी बन जायेंगे। आखिर में अपकेन्द्री बल (centrifugal force) घूर्णन करते द्रव्यमान के इक्वेटर से, पदार्थ को बाहर की ओर फेंकेगा जो एक डिस्क बन जाएगा। अब हमारे सामने एक डिस्क का चित्र है जिसके केन्द्र में उभार है और चारों ओर गोलाकार तारा गुच्छ है। आकाश गंगा बनने का यह वर्णन बताता है कि सबसे पुराने अर्थात् सबसे अधिक आयु के तारे गोलाकार गुच्छ में होंगे और सबसे कम उम्र के डिस्क में, जो केन्द्रिय उभार के चारों तरफ है। ऐसा सचमुच पाया भी जाता है।

चित्र 49 में हमने हर्ट्ज़स्प्रुंग-रसेल आरेख गोलाकर तारा-गुच्छ के लिए दिखाया है। इससे यह पता चलता है कि अधिकतम तारे मुख्य अनुक्रम में नहीं हैं। इन तारों में हाइड्रोजन का जलना समाप्त हो गया है और मुख्य अनुक्रम से अलग हो गए हैं। (चित्र 49 की चित्र 34 से तुलना कीजिए।)
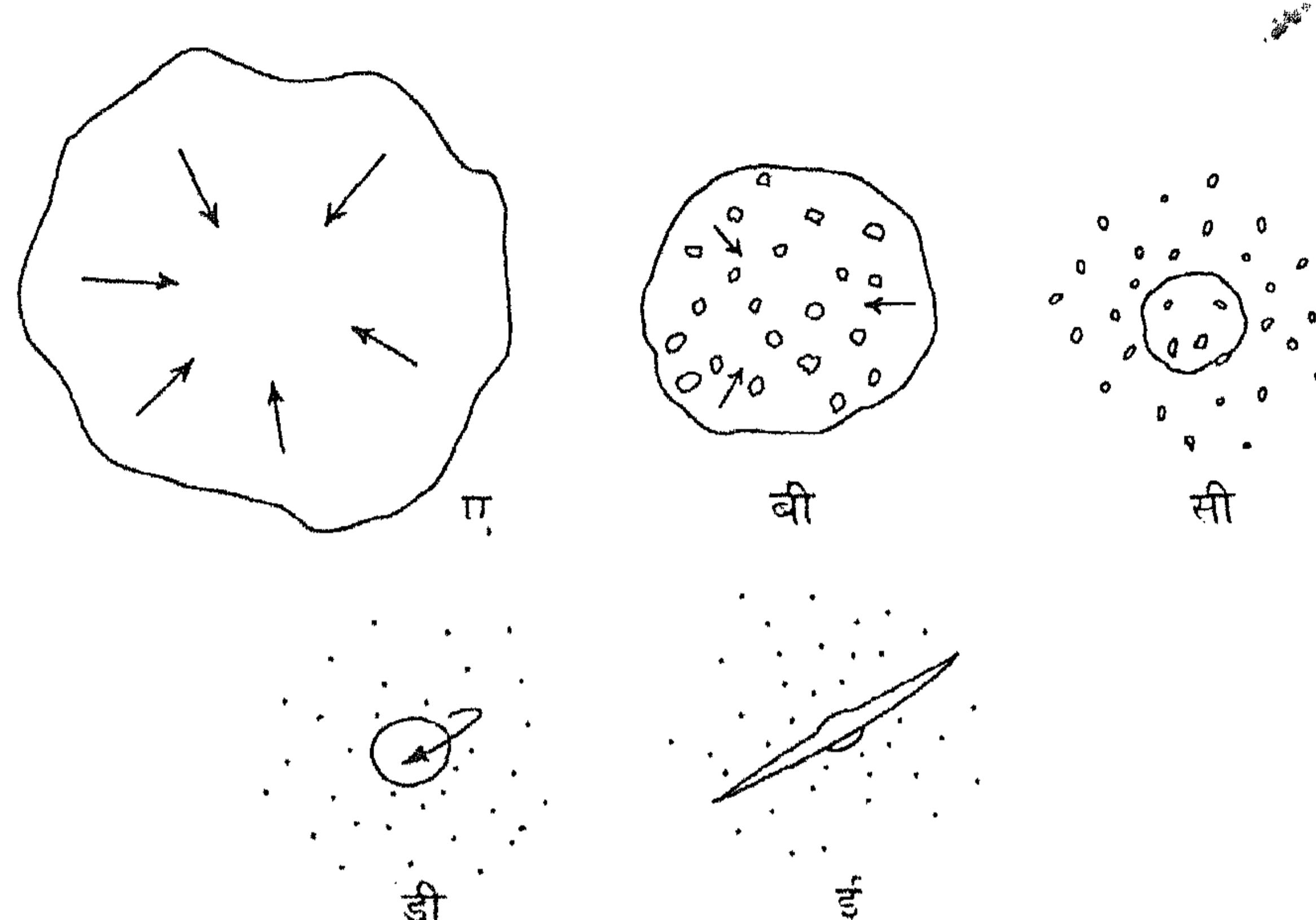
चित्र 48. **आकाश गंगा का निर्माण**

अब इस प्रश्न पर विचार किया जाए कि क्या कारण है कि डिस्क के जिस क्षेत्र में तारे बन रहे हैं वह सर्पिल प्रतिरूप में है तथा डिस्क में अनियमित तरीके से वितरित नहीं है। यह एक कठिन प्रश्न है और इसका उत्तर अभी तक नहीं मिला है। आधुनिक विचार के अनुसार संपीडन (Compression) लहर केन्द्र से बाहर की ओर जाते हुए डिस्क की गैस में से निकलती है (जैसे ध्वनि लहर वायु में किसी स्रोत से बाहर फैलती है)। जैसे ही संपीडन लहर डिस्क के किसी भाग में फैलती है उस भाग के घनत्व में हुई
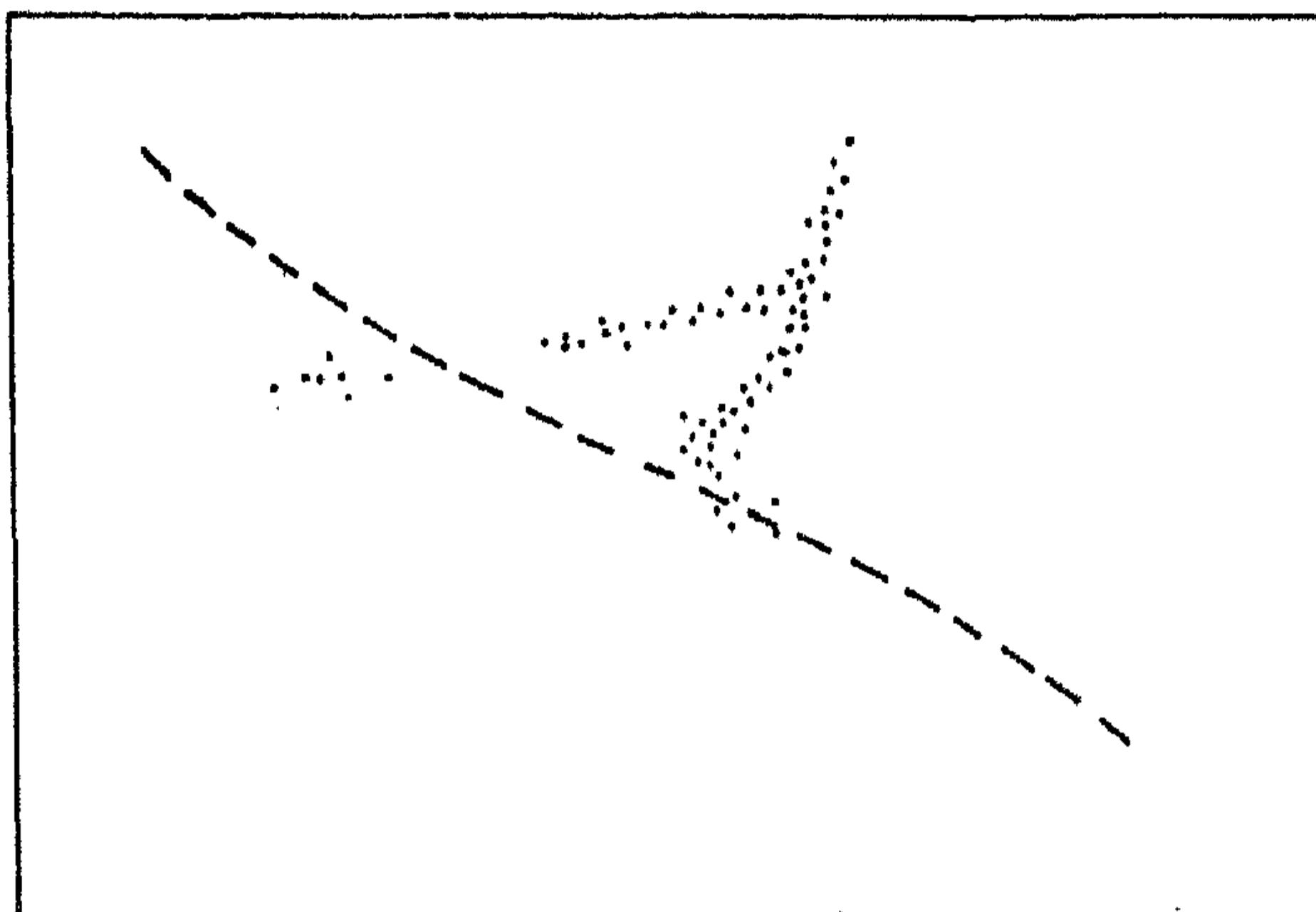
चित्र 49. हट्र्जस्प्रुंग रसेल (एच-आर) आरेख गोलिका गुच्छ के लिए

वृद्धि द्वारा तारों का संचार आरंभ होता है। संपीडन लहरें आकाश गंगाओं के विशाल आकार के कारण केन्द्र से बाहरी क्षेत्र तक पहुँचने में काफी समय लेती हैं। यदि गैस के डिस्क के केन्द्र में घूर्णन करने वाला कोई स्तंभ हो तो केन्द्र ही में दो सर्पिल संपीडन लहरें बन सकती हैं। स्तंभ-युक्त सर्पिल गैलेक्सी के फोटो में ऐसा होने की संभावना दिखाई देती है। लेकिन किस प्रकार सर्पिल हाथ आकाश गंगा में बनते हैं अभी अच्छी तरह नहीं समझा गया है।

कुछ आकाश गंगाओं के विचित्र गुण हैं। इससे स्पष्ट है कि उन आकाश गंगाओं की प्रकृति और निर्माण के रहस्य के विषय में अभी बहुत

जानना बाकी है जिसके बाद ही हम उनको पूर्ण रूप से समझ पाएंगे। सेफर्ट (Sayfert) आकाश गंगा सर्पिल आकाश गंगा है। यदि उसका अल्प समय का एक फोटो लिया जाए तो उसके केन्द्र में एक छोटा और बहुत चमकीला नाभिक दिखाई देगा (केवल सैकड़ों प्रकाश वर्ष विस्तृत)। सेफर्ट गैलेक्सी के नाभिक का स्पेक्ट्रम दीप्त विस्तृत उत्सर्जन रेखाओं से युक्त है जिनके कारण इसमें बहुत उत्तेजना से चल रही गर्म गैसों के उपस्थित होने का संकेत मिलता है। सेफर्ट आकाश गंगा से प्रबल रेडियो लहर का उत्सर्जन होता है लेकिन इसके नाभिक का क्या रूप है और इतने छोटे क्षेत्र में इतनी ऊर्जा कैसे बनती है यह बड़े रहस्य की बात है।

दूसरी आकाश गंगाओं से भी स्पष्ट होता है कि उनका केन्द्रीय क्षेत्र ऊर्ज़ा से भरा है। किन्हीं-किन्हीं में प्रधार (jet) होने से लगता है कि उनके केन्द्रीय भाग से पदार्थ बाहर फेंका जा रहा है। जेट वाली आकाश गंगा का स्पष्ट उदाहरण ज्योतिभरी इलिप्टिकल आकाश गंगा एन जी सी 4486 (NGC 4486) है एन जी सी -'न्यू जेनरल कैटालाग' के लिए प्रयोग होता है। यह गैलेक्सी और नेबुला की ग्रंथ सूची है जो 1888 में तैयार की गई थी। इसके पूर्व मेसियर ने 1771 में पहली ऐसी सूची बनायी थी जिसमें ऐन्ड्रोमिडा की बड़ी आकाश गंगा को एम-31 (M31) नाम दिया गया था। ये जेट शक्तिशाली रेडियो तरंगों का उत्सर्जन करते हैं। एक प्रसिद्ध विस्फोटी आकाश गंगा एम 82 (M82) है, इसकी जाँच बहुत विस्तारपूर्वक हुई है।

आकाश गंगा से रेडियो तरंग निकलने का प्रक्रम सिन्क्रोट्रान विकिरण जैसा है। इस प्रक्रम में यह विकिरण तब निकलता है जब इलेक्ट्रान चुम्बकीय क्षेत्र में प्रकाश की गति के लगभग बराबर गति से घूमते हैं।
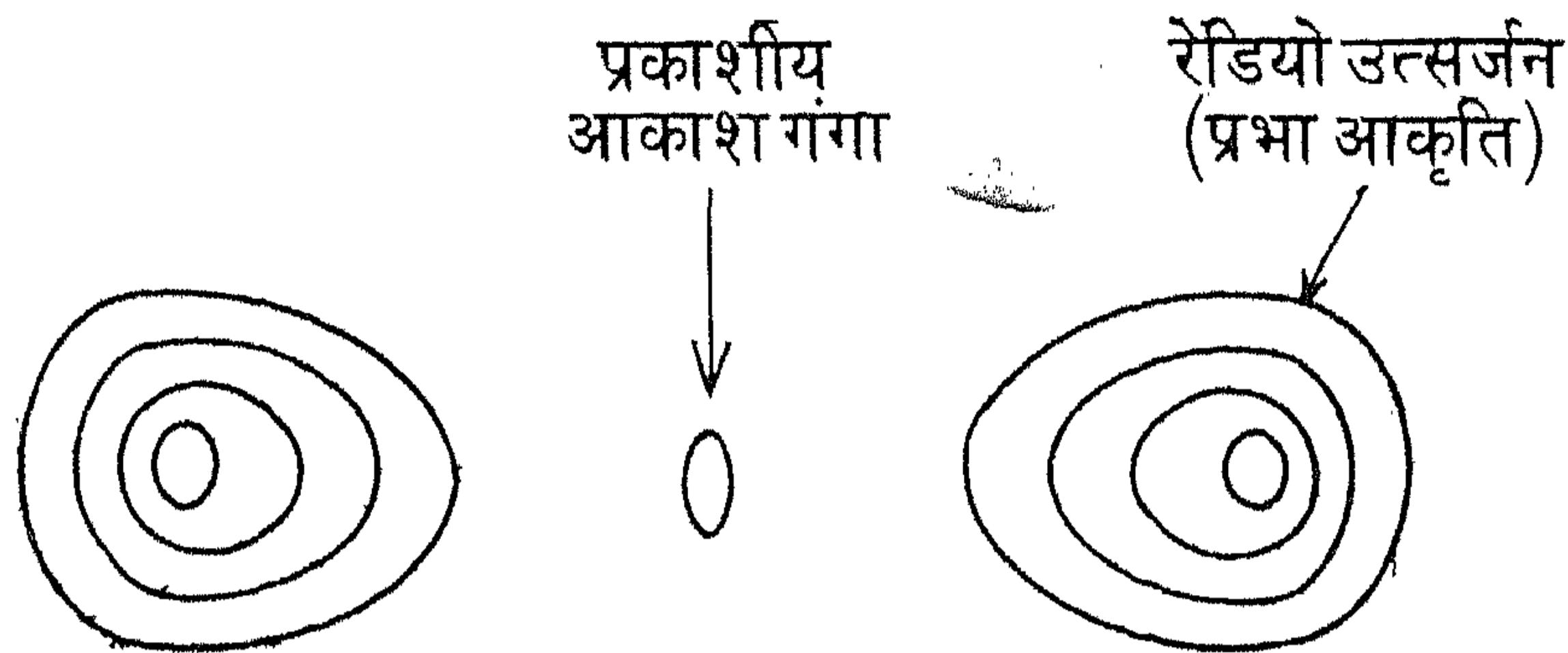
चित्र 50. **दो पोल रेडियो आकाश गंगा की संरचना**

हमारी आकाश गंगा से सबसे प्रबल रेडियो तरंग उत्सर्जित होती हैं और यह
हमारी आकाश गंगा से सबसे प्रबल राडया तरग उत्साजत हाता ह आर यह
उत्सर्जन सेगीटेरियस की दिशा से ही अधिकतम होता है क्योंकि यही आकाश गंगा का केन्द्र है।

एक रेडियो आकाश गंगा का सामान्य आकार, चित्र 50 में दिखाया गया है।

रेडियो तरंगें ज्यादातर दोनों पिंडकों (Lobes) से आती हैं। उनके बीच के भाग से, जो आकाश गंगा का दृश्य क्षेत्र है, कमजोर रेडियो उत्सर्जन होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों पिंडक आकाश गंगा के बाहर किसी कारण फेंक दिये गये हैं। यह रेडियो उत्सर्जन पिंडक के पदार्थ एवं आकाश गंगा में फैले पदार्थ की प्रतिक्रिया के कारण होता है।

□□

22

प्रसारी ब्रह्मांड

एडविन पी. हब्वल (1929) ने आकाश गंगाओं के स्पेक्ट्रा का डाप्लर शिफ्ट अध्ययन किया। ये सभी लाल-स्थानांतरण दिखा रहे थे। लाल शिफ्ट दूरी के साथ बढ़ता जाता है। 'डाप्लर प्रभाव के अनुसार लाल शिफ्ट तब देखा जाता है जब प्रकाश का स्रोत हमसे दूर जा रहा हो। इसी से हब्वल ने अनुमान लगाया कि आकाश गंगाएँ हमसे दूर जा रही हैं। इस प्रतिसरण का नियम बहुत सीधा है। एक आकाश गंगा जो हमसे r दूरी पर है और गति v से उसका प्रतिसार हो रहा है उसकी गति निम्नलिखित है:

$$v = H\ r$$

जहाँ H, हब्वल स्थिरांक है। वह आकाश गंगा जो हमसे 10 लाख प्रकाश वर्ष दूर है उसका 15 किलोमीटर प्रति सेकेंड गति से प्रतिसार होता है। इस आकलन में कुछ अनिश्चितता है क्योंकि आकाश गंगा की दूरी का ठीक से पता लगाना कठिन है। कुछ खगोलज्ञ समझते हैं कि इसका मान

इससे भी अधिक है।

जो आकाश गंगा इससे दो गुना दूरी पर है उसका दो गुना गति से और जो तीन गुना दूरी पर है उसका तीन गुना गति से प्रतिसार होगा, इत्यादि।

यह तथ्य कि दूसरी आकाश गंगाएँ हमसे दूर भाग रही हैं, यह नहीं बताता कि हमारी आकाश गंगा केन्द्र में है। हब्वल के नियम के अनुसार, किसी भी आकाश गंगा से ऐसा ही पाया जाएगा।

प्रसारी ब्रह्मांड के एक सहज चित्र की कल्पना हम इस प्रकार कर सकते हैं। मान लीजिए हमारे पास एक गुब्बारा है जिसकी सतह पर कई बिन्दु बनाए गये हैं जो आकाश गंगाएं दर्शाते हैं। गुब्बारे की सतह द्विविमीय (Two dimensional) विश्व को जताती है जिसमें द्विविमीय खगोलज्ञ द्विविमीय आकाश गंगा में रहते हैं। जब गुब्बारा फुलाया जाता है तब प्रत्येक बिन्दु दूसरे अन्य बिन्दुओं से दूर होता जाता है।

इस द्विविमीय विश्व के कुछ और भी मनोरंजक लक्षण हैं। इस द्विविमीय अंतरिक्ष (यहाँ गुब्बारा) की सतह वक्र है, सपाट नहीं। पूरा विश्व सीमित है फिर भी इसका कोई अंत नहीं है। यह परिमित (Finite) है लेकिन अपरिबद्ध (Unbounded)।

यह विस्मय की बात है और ऐसा सोचना कठिन भी है लेकिन यह सत्य है कि इस त्रिविमीय अंतरिक्ष, जिसमें हम रहते हैं, के ये गुण हो सकते हैं। आइंस्टाइन के गुरुत्व सिद्धांत के अनुसार स्थूल वस्तु के आस-पास का आकाश वक्रित (curved) हो जाता है और यह वक्रता ही इस वस्तु का गुरुत्व क्षेत्र है। (एक ब्लैक होल उस समय बनता है जब कोई निपात होता तारा अपने आसपास के आकाश को इतना वक्रित कर देता है कि बाहर के विश्व से उसका कोई संपर्क नहीं रह जाता)। अंतरिक्ष में फैली आकाश गंगाओं से पूरा ब्रह्मांड वक्रित हो जाता है। यदि हम कई हजार आकाश

गंगाओं (जो हमारे चारों ओर हैं) के विषय में जांच करें तो यह पाएंगे कि ये अनियमित तरीके से नहीं बिखरी हैं बल्कि ये गुच्छों में बंट गई हैं। लेकिन यदि हम करोड़ों आकाश गंगाओं का वितरण जांचें तब यह पायेंगे कि ये एक समान घनत्व से वितरित हैं। गुच्छों का बनना छोटे पैमाने पर दिखता है किन्तु जब हम पूर्ण ब्रह्मांड का चित्र देखेंगे तब गुच्छे नजर नहीं आऐंगे। इसलिए हम ऐसा सोच सकते हैं कि त्रिविमीय आकाश एक समान (uniformly) वक्रित है। इसमें तीन संभावनाएं हैं। वक्रता धनात्मक (positive) हो सकती है। इस अवस्था में ब्रह्मांड सीमित लेकिन अपरिबद्ध होगा या फिर सपाट हो सकता है, या वक्रता ऋणात्मक (negative) हो सकती है। आखिर की दोनों स्थितियों में ब्रह्मांड और आकाश गंगाओं की कुल संख्या अनंत होगी।

आइंस्टाइन के गुरुत्व सिद्धांत से हम पूरे ब्रह्मांड का एक चित्र तैयार कर सकते हैं। हम यह पाते हैं कि ऊपर की स्थितियाँ संभव हैं और तीनों स्थितियों में उनका सिद्धांत यह बताता है कि विश्व का प्रसार होगा। जब आइंस्टाइन ने पहली बार यह पाया तो उन्हें यह पसंद नहीं आया। उन्होंने अपने समीकरण में एक और पद (जिसे उन्होंने कास्मोलोजिकल पद कहा)जोड़ दिया। इससे ब्रह्मांड स्थिर हो सकता है। यह हब्वल की खोज के पहले की बात है। जब हब्वल ने अपने प्रेक्षण में यह दिखाया कि ब्रह्मांड का सचमुच प्रसार हो रहा है तब आइंस्टाइन ने अपनी गलती महसूस की और नए पद को हटा दिया।

आइंस्टाइन के सिद्धांत के अनुसार, ब्रह्मांड की सपाटता, धनात्मक (+) वक्रता, या ऋणात्मक (-) वक्रता सभी इसके औसत घनत्व पर निर्भर करते हैं। हब्वल स्थिरांक का प्रयोग करके, क्रांतिक घनत्व 2×10^{-29} ग्राम/सेंटीमीटर^3 निकाला गया। यदि ब्रह्मांड का औसत घनत्व इस

क्रांतिक घनत्व के बराबर होगा तब आकाश सपाट होगा। यदि घनत्व इससे अधिक होगा तब आकाश धनात्मक वक्रित होगा और यदि इससे कम होगा तो ऋणात्मक वक्रित होगा। इन तीनों स्थितियों में ब्रह्मांड का भूत में आरम्भ एक निश्चित समय में होता है (एक बिन्दु जैसा-अनंत घनत्व के साथ)। एक बड़े विस्फोट (Big bang) के साथ इसका आकार बढ़ता है और यह प्रसार चलता रहता है, जो धीरे-धीरे मंद होकर आज की अवस्था में पहुँचता है। यदि वक्रता धनात्मक है तब ब्रह्मांड के पदार्थों के गुरुत्व आकर्षण के कारण प्रसार रुक जायेगा और भविष्य में किसी समय संकुचन शुरू हो जायेगा। इससे ब्रह्मांड संकुचित और घना हो जाएगा और एक अंतर्मुखी विस्फोट (big crunch) के साथ लुप्त हो जाएगा। यदि घनत्व क्रांतिक घनत्व से कम होगा तो आकाश अनन्त होगा और गुरुत्व बल ब्रह्मांड का प्रसार कभी नहीं रोक पायेगा। तब आकाश गंगाएँ एक दूसरे से दूर, और तेजी से भागती जाएंगी। जब समीप की आकाश गंगाओं की प्रतिसार गति प्रकाश गति से अधिक हो जायेगी तो ये हमारे क्षितिज से बाहर हो जाएंगी' और हम इन्हें देख नहीं सकेंगे।

जब हम ब्रह्मांड के औसत घनत्व की जांच करते हैं तब एक अचंभा सामने आता है। प्रेक्षित घनत्व क्रांतिक घनत्व से करीब $(\frac{1}{100})$ गुना है। यह चिंताजनक बात है क्योंकि यदि यह सत्य है तो ब्रह्मांड अनंत है और उसमें आकाश गंगाओं की संख्या भी अनंत है। इस अनोखे परिणाम से बचा जा सकता है यदि ब्रह्मांड में कोई ऐसा गुप्त द्रव्यमान हो जिससे अभी तक हम अनभिज्ञ हों। इस प्रश्न को, जिसमें ब्रह्मांड में बहुत अधिक द्रव्यमान अदृश्य रूप में है और जिससे ब्रह्मांड सीमित हो जाता है ''गुप्त द्रव्यमान

का प्रश्न (missing mass problem)" कहा जाता है। खगोलज्ञ सोचते हैं कि काफी मात्रा में द्रव्यमान छिपा है। इसके मिलने से गुप्त पदार्थ के प्रश्न का उत्तर मिल जायेगा। यह गुप्त पदार्थ आकाश गंगाओं के बीच सूक्ष्म गैस हो सकता है या आकाश गंगा के चारों ओर मृत तारों का हेलो। आकाश गंगा के गुच्छों की जांच करने पर यह पता चलता है कि उनका द्रव्यमान जितना हम सोचते हैं उससे ज्यादा है। 1981 में कुछ ऐसे संकेत मिले जिनसे यह ज्ञात हुआ कि कुछ प्रकार के न्यूट्रीनों में थोड़ा द्रव्यमान होता है। इससे पहले भौतिक वैज्ञानिकों में यह विश्वास था कि न्यूट्रीनों में बिलकुल द्रव्यमान नहीं है। ये न्यूट्रीनों कई प्रकार के हैं और उनका द्रव्यमान भी है। अतः ब्रह्मांड में गुप्त द्रव्यमान उनके भारी न्यूट्रीनों की उपस्थिति द्वारा समझा जा सकता है। न्यूट्रीनों की पहचान करना बहुत ही कठिन है क्योंकि पदार्थ से उनकी प्रतिक्रिया अत्यंत कमज़ोर है। एक न्यूट्रीनों पृथ्वी के इस पार से उस पार तक बिना किसी पहचान या रुकावट के जा सकता है। ब्रह्मांड की रचना का सिद्धांत यह बताता है कि न्यूट्रीनों उत्पत्ति के समय, बहुत मात्रा में बने होंगे (अध्याय 24 देखें)।

□□

23

क्वेसार

ब्रह्मांड में रेडियो तरंग के स्रोत या तो आकाश गंगाएं हैं या अपनी इसी आकाश गंगा में उपस्थित धूल के बादल। तारों द्वारा भेजी गई रेडियो तरंगें काफी कमज़ोर होती हैं इसलिए रेडियो खगोलिकी में ये अदृश्य रहती हैं। जब 1960 में एक प्रबल रेडियो स्रोत मिला तब यह एक बड़े आश्चर्य की बात समझी गई। इसे 3 सी 48(3C48) कहा गया (3 सी का अर्थ-तीसरा केम्ब्रीज कैटलॉग रेडियो स्रोत से है)। यह स्रोत एक बिन्दु समान पिंड था जो दृश्य भाग में एक हलके नीले तारे जैसा दिखाई दिया। ऐसे, तारे सदृश्य पिंडों की खोज से कई रेडियो स्रोत मिले। सबसे चमकीले स्रोत को (रेडियो तरंग के लिए) 3 सी 273 कहते हैं। पहले इनको ''क्वासी स्टेलर-आबजेक्ट'' (quasi-stellar objects) या क्यू.एस.ओ. कहा गया, बाद में इनका नाम ''क्वेसार (Quasar)'' पड़ा। अब तक एक हजार से अधिक क्वेसार मिल चुके हैं।

शीघ्र ही क्वेसार के अनोखे और रहस्यमय गुण सामने आये। खगोलज्ञ यह समझ गये कि क्वेसार अद्‌भुत पिंड हैं और उनकी खोज खगोल शास्त्र के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है।

क्वेसार के स्पेक्ट्रमों में द्युतिमान उत्सर्जन और अवशोषण रेखाएं दोनों ही होती हैं और इनके ये स्पेक्ट्रम किसी भी ज्ञात तारे के स्पेक्ट्रम से बिलकुल अलग पाये गये। यहां तक कि किस प्रकार के परमाणु इस प्रकार की रेखाएं उत्पन्न कर रहे हैं, शुरू में इसका भी पता नहीं चला। बाद में पता चला कि 3 सी 273 की कुछ रेखाएँ साधारण हाइड्रोजन रेखाएं थीं जिनमें लाल स्थानांतरण (Red Shift) बहुत ही अधिक था। शीघ्र ही यह प्रकट हो गया कि सभी क्वेसारों के स्पेक्ट्रमों में लाल स्थानांतरण बहुत अधिक था।

किसी स्पेक्ट्रम के अधिक लाल शिफ्ट होने के दो कारण हो सकते हैं। पहला कारण यह कि जो वस्तु प्रकाश भेज रही है वह विशाल द्रव्यमान या घनत्व की हो और लाल शिफ्ट गुरुत्व के असर से हो (अध्याय 17) या फिर वह वस्तु बहुत अधिक गति से हमसे दूर, पीछे जा रही हो और लाल शिफ्ट डाप्लर शिफ्ट हो (अध्याय 9)। पर यहां क्वेसार के स्पेक्ट्रम में ये रेखाएं इतनी तीक्ष्ण हैं कि यह लाल शिफ्ट गुरुत्व प्रभाव के कारण नहीं हो सकता है। इसलिए अभी तक, किसी अज्ञात प्रक्रम को छोड़कर क्वेसार का यह लाल शिफ्ट डाप्लर शिफ्ट ही है। इससे यह संकेत मिलता है कि क्वेसार हमसे दूर बहुत तेज गति से जा रहे हैं। उदाहरण के लिए 3 सी 273 प्रकाश की 0.16 गुना गति से और 3 सी 48, प्रकाश की 0.37 गुना गति से दूर जा रहे हैं। कुछ क्वेसार का लाल शिफ्ट इतना अधिक है कि इससे उनकी गति का प्रकाश की गति का 0.9 गुना होने का संकेत मिलता है।

क्वेसार की इतनी तेज़ गति इस लिए है क्योंकि वे बहुत दूर वाली

आकाश गंगाओं की दूरी पर हैं और उनकी गति ब्रह्मांड के प्रसार के कारण है। इसी विचार को ब्रह्मांडीय परिकल्पना (cosmological hypothesis) कहते हैं। इस परिकल्पना को आज अधिकांश खगोलज्ञ मानते हैं। लेकिन अगर यह सच है तो सबसे दूर के क्वेसारों को दो हजार करोड़ प्रकाश वर्ष की दूरी पर होना चाहिए। इस प्रकार ये अब तक देखी गई वस्तुओं में सबसे दूर की वस्तु हुए।

ब्रह्मांडीय परिकल्पना से और हब्बल के नियम का प्रयोग करके हम क्वेसार की दूरी का अंदाजा लगा सकते हैं (अध्याय 22)। यह दूरी जानने के बाद, उनकी दृष्ट प्रभा से हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि वे अपनी प्रकाशीय एवं रेडियो तरंग दैर्ध्यों पर कितनी ऊर्जा का विकिरण करते हैं। यह पता लगाने के बाद हमने देखा कि एक क्वेसार एक आकाश गंगा से 100 गुना अधिक ज्योतिवान है।

क्वेसारों से आने वाला प्रकाश स्थिर नहीं है। इन्हें एक बार देखने के बाद यदि हम इन्हें कुछ महीनों के बाद फिर देखें तो उनके प्रकाश में समय के साथ अंतर दिखाई देगा। चूंकि किसी भी पिंड की ज्योति में अन्तर उस समय से जितना प्रकाश, उसके एक छोर से दूसरे छोर तक जाने में लेता है कम नहीं हो सकता है अतः स्पष्ट है कि क्वेसार का विकिरण उस भाग से आता है जिसका विस्तार एक प्रकाश वर्ष का एक अंश मात्र है। खगोलज्ञों के सामने यह एक पहेली है कि कैसे एक वस्तु की (जो आकाश गंगा के केवल 10 लाखवें भाग के बराबर है) ऊर्जा उत्पादन दर, आकाश गंगा से 100 गुना से भी अधिक हो सकती है?

एफ. हॉयल और विलियम ए. फाउलर (1963) ने इसके विषय में एक सुझाव दिया है : हम पहले भी देख चुके हैं कि आकाश गंगा का नाभिक एक

ऊर्जा पैदा करने वाला क्षेत्र है। यह सेफर्ट आकाश गंगाओं तथा अन्य ऐसी-ऐसी आकाश गंगाओं में, जिनके केन्द्र से पदार्थ निकलते हैं स्पष्ट दिखाई देता है। हमने यह भी देखा है कि गैस के बादल के निपात से कोई आकाश गंगा कैसे बनती है। इन आकाश गंगाओं की ऊर्जा का स्रोत गुरुत्व ऊर्जा हो सकती है यदि निपात होते क्रोड का द्रव्यमान एक तारे के द्रव्यमान से दस हजार गुना अधिक हो। यदि ऐसा हो तो इस वस्तु का चुंबकीय क्षेत्र इतना तीव्र हो जाएगा कि सिनक्रोट्रान विकिरण क्रिया द्वारा रेडियो तरंगें उत्सर्जित होंगी। हॉयल और फाउलर के सुझाव के अनुसार क्वेसार का ऊर्जा उत्पादन भी इसी क्रिया द्वारा एक बड़े पैमाने पर होता है। इस सिलसिले में यह जानना रूचिकर है कि क्वेसार 3 सी 273 में से एक जेट निकलता है। यह जेट वैसा ही है जैसा कि एक रेडियो आकाश गंगा एन जी सी 4486 (NGC 4486) के नाभिक से निकलता है। हॉयल और फाउलर ने इस विषय पर भी ध्यान दिया कि अगर किसी आकाश गंगा के निपात होते हुए क्रोड का द्रव्यमान सूर्य के द्रव्यमान से 10 करोड़ गुना अधिक हो तो क्या होगा? अगर ऐसा होगा तो यह क्रोड एक सुपर तारा बन जाएगा जिसकी ज्योति क्वेसार की दृश्य ज्योति के बराबर होगी। इसके गुरुत्व निपात से जितनी ऊर्जा का उत्पादन होगा उससे क्वेसार के रेडियो तरंग के उत्सर्जन के लिए पर्याप्त ऊर्जा मिल सकेगी। यह संभव है कि आकाश गंगा का ऐसा क्रोड अन्त में एक विशाल ब्लैक होल बन जाए जो करोड़ों तारों को निगलता हो। क्वेसार के विषय में ये सभी विचार अभी तक केवल परिकल्पनाएं हैं और खगोलज्ञों में अभी भी काफी मतभेद है। यदि ब्रह्मांडीय परिकल्पना सत्य नहीं है तब क्वेसार हमसे, जितना हम सोचते हैं उतनी दूर नहीं होंगे। ये किसी समीप की आकाश गंगा के क्रियाशील केन्द्र से तीव्र गति से फेंकी हुई

वस्तुएं हो सकते हैं। दस करोड़ तारों के बराबर ज्योति रखने वाली ये अद्भु
वस्तुएं क्या होंगी? यह फिर भी समझाना एक कठिन समस्या है।

□□

24

विशाल विस्फोट

पिछले अध्यायों में हमने बताया कि ब्रह्मांड का प्रसार हो रहा है इसलिए भूतकाल में आकाश गंगाऐं एक दूसरे के समीप रही होंगी और ब्रह्मांड का घनत्व आज से अधिक रहा होगा। आइन्स्टाइन के गुरुत्व समीकरणों को हल करने पर यह पता चलता है कि ब्रह्मांड आज से बीस हजार करोड़ वर्ष पहले आरंभ हुआ होगा। उस समय इसके घनत्व और तापमान अत्यंत ही ऊँचे रहे होंगे। ब्रह्मांड ने अपना जीवन एक विस्फोट के साथ आरंभ किया और इसे हम विशाल विस्फोट (Big Bang) कहते हैं।

कुछ समय पहले एक दूसरा सिद्धांत भी दिया गया था जिसे 'स्थिर अवस्था सिद्धांत (Steady State Theory)' कहते हैं। पहले पहल इसका विचार एच. बोंडी और टी. गोल्ड ने 1948 में दिया। एफ. हॉयल और जयंत वी. नार्लिकर (1963) ने यह दिखाया कि किस प्रकार आइन्स्टाइन के जेनरल रिलेटिविटी थियोरी को बदला जा सकता है। इस सिद्धांत के अनुसार

जैसे-जैसे आकाश गंगायें एक दूसरे से दूर जाती हैं उनके बीच नया पदार्थ कहीं से उत्पन्न होता है। यही पदार्थ अंतरिक्ष में पुनः नये आकाश गंगा का रूप ले लेता है। इस प्रकार ब्रह्मांड का औसत घनत्व, प्रसार होने पर भी स्थिर रहता है। इस सिद्धांत के अनुसार ब्रह्मांड अनंत है और इसका न कोई आदि है और न अन्त। प्रसार के साथ भी यह एक स्थिर अवस्था में रहता है। लेकिन जब माइक्रोतरंग का विकिरण पाया गया जो किसी रेडियो स्रोत से नहीं आता तब स्टेडी स्टेट थियोरी को छोड़ना पड़ा। हाल ही में (1985) जयंत नार्लिकर और टी. पद्मनाभन ने सृष्टि फील्ड सिद्धांत (Creation field theory) एक नये रूप में दिया है। इससे कई समस्याएं दूर हो गयी हैं। जैसा कि हम आगे बतायेंगे इस माइक्रोतरंग विकिरण से विशाल विस्फोट को बहुत बड़ा आधार मिलता है।

इस समय आकाश गंगा को बनाने वाले पदार्थ में बंद ऊर्जा (आइंस्टाइन का विख्यात संबंध $E=mc^2$ जहां E=ऊर्जा, m=द्रव्यमान और c प्रकाश की गति से) करीब हजार गुना उस ऊर्जा से अधिक है जो ब्रह्मांड में विकिरण के रूप में है। हालाँकि आज ब्रह्मांड के आरम्भ के चरणों में विकिरण की प्रधानता अवश्य रही होगी। जैसे-जैसे ब्रह्मांड का प्रसार हुआ (और इसके ऊर्जा के घनत्व में कमी हुई) विकिरण का घनत्व, पदार्थ की ऊर्जा के घनत्व के मुकाबले तेजी से गिरा। अब उस विकिरण प्रधान ब्रह्मांड की कल्पना करें जिसमें पदार्थ परमाणु नाभिकों (जिसमें प्रोटान तथा न्यूट्रान आपस में बंधे हैं) एवं इलेक्ट्रानों के रूप में हैं और ये सब फोटान से अभिक्रिया कर रहे हैं। इस स्थिति में किसी परमाणु के होने की संभावना नहीं है। यदि कोई परमाणु हो भी, तो उसका निष्कासन विकिरण की तीव्रता से हो जायेगा। ब्रह्मांड के प्रसार के साथ विकिरण का ऊर्जा घनत्व, पदार्थ के घनत्व से कम हो जाएगा। इस चरण में नाभिक और इलेक्ट्रान मिल कर

परमाणु बना सकते हैं। अब इस स्थिति में पदार्थ और विकिरण में अभिक्रिया कमज़ोर हो जाएगी और हम यह कह सकते हैं कि विकिरण पदार्थ से अलग हो जाता है। इस चरण में ब्रह्मांड, पदार्थ की प्रधानता में पहुँच जाता है। यह स्थिति तब आई थी जब हमारा ब्रह्मांड 10 लाख वर्ष की आयु का था। उस समय इसका तापमान कई हजार डिग्री केल्विन था। ब्रह्मांड के प्रसार के साथ विकिरण का तापमान कम होता गया और आज इसका तापमान करीब 3 डिग्री केल्विन है (परम शून्य -273 डिग्री सेंटीग्रेट के बराबर है)। 3 डिग्री केल्विन उस विकिरण से संबंध रखता है जिसकी तरंग दैर्ध्य माइक्रोवेव क्षेत्र में पड़ती है (अध्याय 10 देखें)।

इस ''तीन डिग्री माइक्रोवेव पृष्ठभूमि विकिरण'' की ए. पेंजियास और आर. विलसन ने 1965 में खोज की थी। इसके बीस साल पहले जार्ज गैमों ने इस विकिरण की प्रागुक्ति की थी। यह किसी स्रोत में नहीं आता लेकिन आकाश में चारों ओर बराबर की मात्रा में फैला है। इसका मिलना, विशाल विस्फोट (बिग बैंग) सिद्धांत के सही होने का एक प्रमाण था।

ब्रह्मांड के जन्म (उत्पत्ति) के 10^{-4} सेकंड के बाद इसका तापमान 10^{12} डिग्री और घनत्व 4×10^{6} ग्राम/से.मी.^{3} था। इस समय से 10 लाख वर्ष बाद तक (विकिरण प्रधान महाकल्प के अंत तक) का समय मानक महाकल्प (standard era) कहलाता है।

मानक महाकल्प में ब्रह्मांड का इतिहास समझने के लिए यह जानना जरूरी है कि 100 करोड़ डिग्री से ऊपर तापमान होने पर परमाणु नाभिक नहीं रह सकता। इस तापमान पर, विकिरण नाभिकों को तोड़ देगा और केवल प्रोटान और न्यूट्रान रह जायेंगे। इस समय हमें एक और अभिक्रिया को ध्यान में रखना होगा। 600 करोड़ डिग्री तापमान से ज्यादा पर युग्म निर्माण (Pair creation) होता है। इस तापमान पर विकिरण के फोटान

(गामा रे), इलेक्ट्रान और पाजिट्रान को एक साथ जन्म देते हैं। ($\gamma \rightarrow e^- + e^+$)। पाजिट्रान, इलेक्ट्रान प्रतिकण (anti particles) हैं। इसलिए 600 करोड़ डिग्री के ऊपर विकिरण के साथ इलेक्ट्रान और पाजिट्रान भी काफी संख्या में मिलते हैं। ऐसे युग्मों का निरंतर बनना और नष्ट होना लगा रहता है।

मानक महाकल्प के आरंभ में ब्रह्मांड एक विकिरण (फोटान) का सागर था जिसमें प्रोटान, न्यूट्रान, इलेक्ट्रान, पाजिट्रान, न्यूट्रीनो और ऐंटीन्यूट्रीनो भी थे। प्रोटान और न्यूट्रान की संख्या लगभग बराबर थी यद्यपि न्यूट्रान का क्षय (अध्याय 14 देखें) होता है, इलेक्ट्रान के बड़ी संख्या में रहने के कारण उलटी अभिक्रिया ($p+e^- \rightarrow n+\nu$) से न्यूट्रान फिर बन जायेंगे। आकाश के किसी क्षेत्र में इलेक्ट्रान न्यूट्रीनों और उनके प्रतिकण लगभग फोटान की संख्या के बराबर होंगे। इसकी तुलना में प्रोटान और न्यूट्रान की संख्या काफी कम (10^{-9} गुना) होगी। क्योंकि पूरा विद्युत आवेश शून्य होना चाहिए, इस लिए इलेक्ट्रान की संख्या पाजिट्रान की संख्या से बहुत थोड़ी ही अधिक होगी।

जैसे-जैसे तापमान कम हुआ न्यूट्रान का क्षय तेज होता गया। उलटी अभिक्रिया जिसमें प्रोटान और इलेक्ट्रान टकराकर न्यूट्रान और न्यूट्रीनो बनाते हैं इस क्षय को पूरा नहीं कर सके। इसलिए न्यूट्रान की संख्या प्रोटान से कम हो गयीं। जब तापमान और कम होकर 600 करोड़ डिग्री से भी कम हो गया जो कि युग्म इलेक्ट्रान-पाजिट्रान बनने के लिए आवश्यक है, इलेक्ट्रान और पाजिट्रान के बीच संघट्टन ($e^-+e^+ \rightarrow \gamma$) तेज हो गया और यह तब तक चला जब तक सभी पाजिट्रान खत्म नहीं हो गये। इस प्रकार केवल इलेक्ट्रान (जो थोड़ा अधिक मात्रा में थे) और उतने ही प्रोटान बच गये। इस चरण में

ब्रह्मांड के जन्म के बाद तीन मिनट बीत चुके हैं। इस समय ड्यूटेरियम नाभिक (प्रोटान और न्यूट्रान के संघट्टन से) बन रहे थे– लेकिन इनका जीवन काफी कम था। जैसे ये बनते थे उसके तुरन्त बाद विकिरण योग से नष्ट हो जाते थे। कुछ समय बाद जब तापमान और गिरा (100 करोड़ डिग्री के नीचे) तब ड्यूटेरियम नाभिक स्थिर हो गये। हाइड्रोजन का जलना (अध्याय 14) अब शुरू हो जाता है और बाकी के न्यक्लीयान (प्रोटान और न्यूट्रान) बंध कर ऐल्फा कण (हीलियम नाभिक) बनाते हैं। इस प्रकार ब्रह्मांड में अब उपस्थित विकिरण में प्रोटान और ऐल्फा कण के साथ इलेक्ट्रान, न्यूट्रीनों और ऐंटीन्यूट्रीनों भी हैं। ऐल्फा कण में उपस्थित न्यूट्रान स्थायी रहते हैं। प्रोटान और न्यूट्रान की संख्या का अनुपात 3:1 उस समय से आज तक वही बना हुआ है। इस चरण के 10 लाख वर्ष बाद इलेक्ट्रान, प्रोटान और अल्फा नाभिक से मिलकर हाइड्रोजन और हीलियम परमाणु बने। इसके साथ ही विकिरण प्रधान महाकल्प का अंत हुआ।

जैसा कि हमने देखा मानक महाकल्प के समय ब्रह्मांड के विकास को समझने के लिए इलेक्ट्रान-पाजिट्रान युग्म सृष्टि की परिघटना अत्यंत आवश्यक है। प्रोटान और न्यूट्रान, इलेक्ट्रान से करीब 2000 गुना अधिक भारी हैं और उनके युग्म (प्रोटान-ऐंटीप्रोटान, न्यूट्रान-ऐंटिन्यूट्रान) को बनाने के लिए विकिरण को बहुत अधिक तापमान (10^{13} डिग्री) चाहिए। यहां कुछ और कणों के सम्बन्ध में भी कुछ कहना आवश्यक होगा जैसे म्यूयान इलेक्ट्रान से 200 गुना भारी है और पायान इलेक्ट्रान से 300 गुना भारी है। म्यूयान-ऐंटीम्यूयान और पायान-पायान युग्म बनाने के लिए 10^{12} डिग्री ताप होना चाहिए। यह स्थिति मानक महाकल्प से थोड़ा पहले आती है। इसलिए मानक महाकल्प में अनेकों अन्योन्य क्रियाएं (interactions)

से प्रोटान-ऐंटीप्रोटान, न्यूट्रान-ऐंटीन्यूट्रान, पायान-पायान, इत्यादि होती जो भौतिकी को बहुत कठिन बना देती हैं। ये अन्योन्य क्रियाएँ बहुत टिल हैं और अभी तक इनके विषय में पूर्ण ज्ञान उपलब्ध नहीं है। फिर भी ज्ञानिकों ने मानक महाकल्प की पूर्व की स्थिति के विषय में जो परिकल्पना । है उसका हम थोड़ा जिक्र करेंगे। इसके लिए मूलकण भौतिकी lementary particle physics) के विषय में कुछ और बताना आवश्यक गा।

परमाणु, विद्युत चुम्बकीय अन्योन्य क्रिया द्वारा आपस में बंधे रहते हैं। धनात्मक आवेश वाले नाभिकों और ऋणात्मक आवेश वाले इलेक्ट्रानों आकर्षण से आपस में बंधे रहते हैं। यह आकर्षण बल, इलेक्ट्रान एवं टान के बीच लगातार होने वाले फोटान विनिमय से उत्पन्न होता है।

इसी तरह दुर्बल अन्योन्य क्रिया (Weak interaction) भी किसी कण निमय प्रक्रम द्वारा ही उत्पन्न होती है। जिन कणों का विनिमय होता है न्हें W तथा Z बोसान कहते हैं। उदाहरण के लिए न्यूट्रान का क्षय ध्याय 14 देखें) भी एक दुर्बल अन्योन्य क्रिया है जो दो चरणों में पूरी ती है :

$$n \rightarrow p+W \qquad\qquad W \rightarrow e + \nu$$

अब्दुस सलाम और एच. वाइनबर्ग (1967) के सिद्धांत के अनुसार द्युत चुंबकीय और दुर्बल अन्योन्य क्रियाऐं एक ही क्रिया के दो रूप हैं। च्च ऊर्जा पर Z और W बोसान का द्रव्यमान (फोटान की तरह) शून्य ता है। इस उच्च ऊर्जा पर विद्युत चुंबकीय और दुर्बल अन्योन्य क्रियाओं समानता पाई जायेगी। यह स्थिति ब्रह्मांड के विकास के प्रारंभ के क्षणों . 10^{15} डिग्री से ज्यादा ताप पर (लगभग 10^{-11} सेंकड सृष्टि के आरम्भ के

बाद) की होगी जब ब्रह्मांड का ताप इससे नीचे गिरता है, तब मध्यवर्ती Z और W बोसान एक प्रतिक्रिया द्वारा द्रव्यमान वाले हो जाते हैं (इनका यह द्रव्यमान इलेक्ट्रान से 10^4 गुना ज्यादा है)। इस प्रतिक्रिया को हिग्स विधि (Higgs mechanism) कहते हैं। जब यह स्थिति आती है तो हमारा ब्रह्मांड एक प्रावस्था संक्रमण (phase transition) से गुज़रता है। यह संक्रमण उसी तरह है जैसे लोहे का टुकड़ा चुंबक बन जाता है या पानी जम कर बर्फ बन जाता है। ऐसे संक्रमण के कारण ब्रह्मांड की प्रसार गति में बहुत वृद्धि हो जाती है।

प्रबल अन्योन्य क्रिया (Strong interaction) वह बल है जिससे परमाणु नाभिक बंधें रहते हैं। यह एक जटिल बल है, जिसमें मेसान का विनिमय न्यूक्लियान (प्रोटान और न्यूट्रान) के बीच होता है।

लेकिन आधुनिक विचार से न्यूक्लियान और मेसान प्राथमिक कण नहीं माने जाते हैं। ये क्वार्क (quarks) से बने हैं। एक मेसान, एक क्वार्क और एक ऐंटीक्वार्क से बनता है और एक न्यूक्लियान, तीन क्वार्क से बनता है। न्यूक्लियान और पाई मेसान अपने परिवार के सबसे हल्के कण हैं। इस परिवार के सभी कण प्रबल अन्योन्य क्रिया में भाग लेते हैं। इसलिए इन कणों का नाम हेड्रान (Hadron) भी पड़ा। ये हेड्रान जिस बल से बंधे हैं वह ग्लुआन (Gluon) के विनिमय से (क्वार्क के बीच जिनसे हेड्रान बना है)होता है। इस बल की एक विशेषता यह है कि जब क्वार्क एक दूसरे के बहुत ही समीप होते हैं तब अभिक्रिया दुर्बल होती है लेकिन थोड़ी दूर हटाने पर यह अत्यंत प्रबल हो जाती है। इससे पता चलता है कि क्वार्क और ऐंटीक्वार्क आसानी से हेड्रान के अंदर विचरण करते हैं। लेकिन स्वतन्त्र क्वार्क हेड्रान के बाहर नहीं रह सकता। इसका कारण है कि जो ऊर्जा हेड्रान को तोड़ने के लिए पर्याप्त हैं वही क्वार्क एवं एन्टीक्वार्क युग्म बनाने के लिए भी पर्याप्त

हैं। इसलिए हेड्रान टूटकर दूसरे हेड्रान बन जाते हैं लेकिन स्वतंत्र क्वार्क नहीं निकल पाते।

ब्रह्मांड के जन्म के समय क्वार्क सिद्धांत का महत्व है। **मानक महाकल्प** के पूर्व **हेड्रान महाकल्प** रहा होगा। उस समय ब्रह्मांड प्रोटान, न्यूट्रान, ऐंटीप्रोटान, ऐन्टीन्यूट्रान, पायान्स से भरा होगा और ये एक दूसरे से प्रबल अन्योन्य क्रिया से क्रियाशील होंगे। इससे भी कुछ पूर्व, इनका घनत्व इतना अधिक होगा कि हेड्रान पर बहुत दबाव पड़ रहा होगा जिसके कारण वे अलग स्वतंत्रता से रह सकते होंगे। उनका वियोजन होकर एक क्वार्क और ऐंटीक्वार्क का सागर बन गया होगा। पर ये इतने करीब होंगे कि एक दूसरे से उनकी अभिक्रिया (ग्लुयान के विनिमय से) दुर्बल होगी। इस "क्वार्क सूप" में और भी कण होंगे जैसे इलेक्ट्रान, म्यूयान, न्यूट्रीनो (मिलकर नाम लेप्टान) और उनके ऐंटीकण, और फोटान।

सलाम-वाइनबर्ग सिद्धांत ने सफलतापूर्वक विद्युत चुम्बकीय और दुर्बल अन्योन्य क्रियाओं को मिलाकर एक विद्युत क्षीण अन्योन्य क्रिया बनाई। यह संभव है कि विद्युत क्षीण अन्योन्य क्रिया और क्वार्क ग्लुयान अन्योन्य क्रिया (प्रबल अन्योन्य क्रिया का स्रोत) दोनों किसी एक बल के दो रूप हों। इनके एकीकरण के लिए कई प्रस्ताव आए हैं। इन्हें ग्रेंड यूनीफाईड थियोरीज़ (Grand Unified Theories—GUT) कहते हैं।

इन प्रस्तावों में से कोई भी सलाम-वाइनबर्ग सिद्धांत के जैसा सफल नहीं हुआ है। फिर भी सभी यही संकेत देते हैं कि एकीकरण बहुत ऊँचे ऊर्जा स्केल पर होगा (जैसे तापमान 10^{28} डिग्री जो ब्रह्मांड के जन्म के 10^{-33} सेंकड बाद उपलब्ध होगा)। एक सही एकीकृत सिद्धांत हमारी प्रारंभिक ब्रह्मांड के विषय में जानकारी को थोड़ा और पीछे 10^{-43} सेकेंड ढकेल सकती है। जब तापमान 10^{32} डिग्री होगा। इस तापमान पर कणों की ऊर्जा

इतनी अधिक होगी कि उनके बीच गुरुत्व बल और दूसरे बलों के समान प्रबल होगा। 10^{-43} सेकेंड से पहले क्या स्थिति है, हमें कुछ मालूम नहीं क्योंकि अभी हमारी समझ में यह नहीं आया है कि गुरुत्व बल, दूसरे बलों से किस प्रकार संबंधित है। हमें ऐसे सिद्धांत की आवश्यकता है जो सभी बलों को (गुरुत्व को भी) एकीकृत करें। अभी तक ऐसा संभव नहीं हुआ है। इसके पहले एक और समस्या का सामना करना होगा कि जो गुरुत्व सिद्धांत हमारे सामने है (आइंस्टाइन का जनरल रिलेटिविटी सिद्धांत)वह ब्रह्मांड के बनते समय (जब घनत्व और तापमान बहुत ऊँचा था) लागू नहीं होगा। गुरुत्व नियम में थोड़ा भी अंतर होने पर ब्रह्मांड के आरंभ के क्षणों में क्या स्थिति होगी काफी अंतर पैदा कर सकता है। हमारा हाल का अनुसंधान (1984-1986 बंगलोर में, के.पी. सिंहा और उनके सहयोगी ई.ए. लार्ड, बी.एस. सत्यप्रकाश और पी. गोस्वामी द्वारा) आइंस्टाइन के सिद्धांत में एक प्राकृतिक रूपांतर लाया है। इसमें एक क्रांतिक (critical) ताप के ऊपर (या क्रांतिक त्रिज्या के नीचे) ऐसी स्थिति रूपांतरित होती है कि गुरुत्व (अभिक्रिया) स्थिरांक का चिन्ह बदल जाता है। इससे पता चलता है कि ब्रह्मांड के आरंभ में गुरुत्व बल प्रतिकर्षी था, आज के जैसे आकर्षक नहीं। आइंस्टाइन के सिद्धांत में सबसे बड़ी समस्या ब्रह्मांड का आरंभ एक बिंदु से होना है, जिस समय, घनत्व और तापमान अनंत हैं। ऐसी अवस्था में कोई विज्ञान शास्त्र और नियम शेष नहीं रह जाएंगे। अगर गुरुत्व प्रतिकर्षी हो जाता है तब हो सकता है कि घनत्व और ताप का एक उच्चतम मान हो और शुरुआत बिग बैंग से न हो बल्कि एक प्रारंभिक संकुचन अवस्था के अंत में होने वाले उच्छलन से हो। इसके बाद प्रसार होने लगता है और गुरुत्व, आकर्षण बल का रूप ले लेता है।

यह बड़े अचम्भे की बात है कि ब्रह्मांड शास्त्र जो पदार्थ का बड़े

पैमाने पर अध्ययन है, अब छोटे अणु के अध्ययन से संबंधित हो गया है। ब्रह्मांड के पूर्व क्षण में न केवल सभी नियमों का एकीकरण होता है बल्कि बड़े और छोटे पैमाने भी मिल जाते हैं। ब्रह्मांड की सृष्टि, कणों का रहस्य और जीवन की उत्पत्ति, यह सभी विज्ञान के सीमांतक क्षेत्र हैं। शायद इन सभी प्रश्नों के उत्तर संबंधित हैं। हाल की खोज (1985-86) से पता चलता है कि ब्रह्मांड में पदार्थ का वितरण (100 पारसेक स्केल पर) थोड़ा विषमदेशिक (anisotropic) है। इससे संकेत मिलता है कि ब्रह्मांड किसी समय क्रांतिक अवस्था से गुज़रा होगा। इससे पदार्थ वितरण झागदार (frothy) है।

रूस के वैज्ञानिक ए.डी. लिंडे ने (1986) अस्तव्यस्त स्फीति (chaotic inflation) का सुझाव दिया है। यह स्फीति सदा चलती रहती है। इसमें ब्रह्मांड की सृष्टि और पुनरुत्पादन निरंतर होता रहता है। इसमें ब्रह्मांड कई भागों में विभाजित हो जाता है। हर एक भाग एक छोटा ब्रह्मांड जैसा है और उसकी स्फीति होती रहती है। हम किसी एक छोटे ब्रह्मांड में रहते हैं जो दूसरों से काफी अंतर रखता है। इस माडल में भी आदि और अंत का कोई अर्थ नहीं है। लेकिन इस दिशा में अभी और अनुसंधान की आवश्यकता है।